# ॥ श्री जिनाज्ञा-विधि-प्रकाश ॥

## प्रथम प्रकाश।

### मंगलाचरण ।

सोरठा।

केवल ज्ञान अनन्त, आदिनाथ प्रगटावियो।
यातें प्रथम नमन्त, सुलभ मोक्ष मारग करन ॥ १ ॥

दोहा।

तपे अगन मिथ्यात की, लहैं शान्ति भव जीव।
तातें वन्दन करत हौं, शान्ति नाथ सुखसींव ॥ २ ॥
विषय वासना अनितता, नेमनाथ दरसाय।
तिन को वंदन करन तें, नेक न विषय सताय ॥ ३ ॥
पार्श्वनाथ को प्रणमिये, जिन के बाल गोपाल।
तुरतै जिन मारग लहैं, मिटैं सकल जंजाल ॥ ४ ॥
शासनपति स्वामी सबल, वर्द्धमान भगवान।
भक्ति सहित वंदन किये, होयं सकल कल्यान ॥ ५ ॥
सद्गुरु आतम ज्ञान को, फुरमायो उपदेश।
भाव सहित वंदन करौं, मेटहु सकल कलेश ॥ ६ ॥
श्रीजिनवर वाणी विमल, श्रुति देवी सुख रूप।
ज्ञान खान वंदन करौं, दरसै शुद्ध सरूप ॥ ७ ॥

श्रीवीतराग, गुरु, व श्रुति देवी को नमस्कार रूप मंगलाचरण ग्रंथ

की आदि में किया जाता है सो हम भी ग्रंथ की आदि में मंगलाचरण कर-के ग्रंथ का प्रारम्भ करते हैं। अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि एक स्तुति करने से क्या मंगल नहीं होता जो इतनी स्तुतियां कीं ? तो समा-धान यह है कि, जो काम किया जाता है सो निष्प्रयोजन नहीं किंतु सप्रयोजन, सो अभिप्राय को नहीं जानने से शंका होती है। वह अभिप्राय यह है कि प्रथम इस अवसर्पिणी काल में मोक्षमार्ग का, इस क्षेत्र आश्रय अठारा (१८) कोड़ाकोड़ी सागरोपम का अभाव था सो उस अभाव को श्रीआदिनाथजी अर्थात् ऋषभदेव स्वामी ने दूरकर केवल ज्ञान उत्पन्न करके भव्य जीवों के वास्ते मार्ग खुलासा किया इसलिये युगादि अर्थात् प्रथम तीर्थंकर को नमस्कार किया है। दूसरा श्रीशान्तिनाथ स्वामीजी की स्तुतिरूप मंगल का इसवास्ते आचारण किया है कि भव्य जीव जो कि मिथ्यात्व रूप अग्नि से तपते हैं उन की शान्ति के वास्ते समगत प्राप्त होने का विषय कहेंगे। श्रीनेमनाथ स्वामीजी की स्तुति करने का कारण यह है कि श्रीबाईसवें तीर्थंकर बालब्रह्मचारी थे। इस बालब्रह्मचारीपने से विषय-सुख की अनित्यता दि-खाने का प्रयोजन है। श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी स्तुति का कारण यह है कि जैनी श्रीपार्श्वनाथ स्वामीजी के बालगोपाल सर्व जगत् में प्रसिद्ध हैं। और श्रीवर्द्धमान स्वामीजी की स्तुति का कारण यह है कि श्रीवर्द्धमान स्वामीजी आसन्नोपकारी अर्थात् नजदीक के उपकार करनेवाले व शासन-पति-वर्त्तमान काल में शासन अर्थात् चतुर्विध संघ के शिक्षक हैं। श्रीगुरुजी की स्तुति रूप मंगल का कारण यह है, कि आत्मस्वरूप जिस से प्राप्त हो ऐसी जो विद्या तिस की शिक्षा करनेवाला अर्थात् पढ़ानेवाला नतु भेषधारी या न्याय व्याकरण छन्द काव्य आदि पढ़ानेवाला। यहां तो एक

नाम मात्र कहा है परन्तु गुरु का लक्षण आगे कहेंगे कि गुरु किस को कहते हैं। श्रीश्रुतिदेवी ताकी स्तुति रूप मंगलाचरण इसवास्ते है कि श्रुति काहिये वाणी अर्थात् भाषा वर्णना, जिस से उत्पन्न हुआ जो शब्द, उस के श्रोत्र सम्बन्ध से जो हुआ ज्ञान, इस ज्ञान से रचना की इस ग्रंथ की अर्थात् इस ग्रंथ में भगवत की वाणी रूप अतिशय का; बहुमान पूर्वक मैंने अपने हृदय में स्मरण कर इस ग्रंथ का प्रारंभ किया है, इसलिये जुदे २ मंगल का प्रयोजन ठीक है॥

**शंका**—आपने यह मंगलाचरण क्यों किया है? जो कहो कि ग्रन्थ की आदि से लेकर अन्त तक समाप्ति के वास्ते मंगलाचरण किया है तो हम कहते हैं कि देखो जिन्हों ने मंगल किया है उन के ग्रंथ की समाप्ति नहीं हुई जैसे "बल्यादऊ" जिन्हों ने मंगलाचरण करके ग्रंथ प्रारंभ किया और ग्रंथ की समाप्ति नहीं हुई। और जिन्होंने ग्रंथ के प्रारंभ में मंगल नहीं किया उन के ग्रंथ समाप्त अर्थात् परिपूर्ण हुए हैं, जैसे कि कादम्बरी आदि। जिन्हों ने ग्रंथ के प्रथम में मंगल न किया और ग्रंथ की समाप्ति होगई, सो उन के ग्रंथ मोजूद हैं, इसलिये ग्रंथ की समाप्ति के वास्ते मंगल का करना निष्प्रयोजन है॥

**समाधान**—जो ऐसी शंका तुमने की सो तुम को, अभिप्राय नहीं जानने से ऐसी तर्क उठती है। अभिप्राय यह है कि ग्रंथ समाप्ति के वास्ते मंगलाचरण नहीं है क्योंकि देखो जिस पुरुष को ग्रंथ बनाने की शक्ति है वही अपनी शक्ति से ग्रंथ को समाप्त करेगा। कदाचित् ऐसा न होय तो हर एक पुरुष स्तुति आदिक मंगल को आचरण करके ग्रंथ बनाने का प्रारंभ करे परन्तु कदापि उस से पूर्ण न होगा अर्थात् किंचित् भी न बनेगा। इसलिये मंगलाचरण ग्रंथ समाप्ति का कारण नहीं

किन्तु श्रेष्ठ अर्थात् अच्छे पुरुषों ने जिस मार्ग को आचरण अर्थात् अंगीकार किया है उस मार्ग की श्रेष्ठता दिखाने के वास्ते है। दूसरा प्रयोजन यह है कि जो सर्वज्ञ देव को नहीं मानने वाले ऐसे नास्तिक मतवाले हैं उनका निराकरण करने के वास्ते और सर्वज्ञ देव सिद्ध करने के वास्ते है। इस मंगल पर झगड़े तो बहुत हैं परन्तु हमको तो ग्रंथ बढ़जाने के भयसे दिखाने की इच्छा नहीं है। अब मंगल का असल प्रयोजन तुम को सुनाते हैं कि मंगल ग्रंथ मे तीन जगह होता है। आदि का मंगल तो इसवास्ते होता है कि जो जिज्ञासु ग्रंथ को पढ़ना शुरू करे उस जिज्ञासु को उस ग्रंथ की आदि से अन्त तक समाप्ति हो जाय अर्थात् उसको सम्पूर्ण पढ़जाय इसलिये ग्रंथकर्त्ता उस जिज्ञासु के अर्थ स्तुति रूप मंगल करता है नतु अपने ग्रंथ बनाने की समाप्ति के अर्थ। और मध्य मंगल इसवास्ते किया जाता है कि जो जिज्ञासु उस ग्रंथ को बांचे उसका जो अर्थ सो यथावत् जिज्ञासु के चित्त में दृढ़ होकर स्थित रहे, और अन्त मंगल जो है सो इसवास्ते किया जाता है कि जो ग्रंथ आत्म उपदेश का है सो अविच्छेद अर्थात् उसका परम्परागत से अभाव न हो। इसका यह तात्पर्य है कि वह ग्रंथ गुरु परम्परा से चिरंजीव अर्थात् प्रलय पर्यन्त स्थिर रहै और जब तक धर्म के आचरण करनेवाले भव्य जीव रहैं तब तक रहै। इस प्रयोजन से ग्रंथकर्त्ता मंगल को आचरण करता है। मंगल तीन प्रकार का है—एक तो नमस्कारात्मक जैसे 'सद्दर्शणं जिणं नत्वा' इसको नमस्कार आत्मक कहते हैं। दूसरा वस्तु निर्देशात्मक जैसे "धम्मो मंगल मुक्कट्ठं" इसको वस्तुनिर्देश—आत्मक कहते हैं। और तीसरा आशिर्वादात्मक जैसे 'जयई जगजीव जोनि वियाणओ' इस को आशिर्वाद आत्मक कहते हैं।

सो, नमस्कार मंगल आदि में, वस्तु निर्देश मंगल मध्य में, और आशिर्वाद मंगल अन्त में चाहिये। इसलिये ग्रंथकर्त्ता अवश्यही मंगलाचरण करे। अब ग्रंथ की आदि में सम्बन्ध आदि चतुष्टय होता है सो सम्बन्ध आदि चतुष्टय उसको कहते हैं कि सम्बन्ध, विषय, प्रयोजन और अधिकारी इनको अनुबन्ध कहते हैं। इन च्यारों के विना जिज्ञासु की प्रवृत्ति रुचि पूर्वक नहीं होती इसलिये ग्रंथकर्त्ता को सम्बन्ध आदि च्यारों को अवश्य करना चाहिये सो हमभी इस ग्रंथ में सम्बन्ध विषय प्रयोजन और अधिकारी दिखाते हैं ॥

सम्बन्ध कई प्रकार का होता है। ग्रंथ का और विषय का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है; ग्रंथ प्रतिपादक है और विषय प्रतिपाद्य है। जो प्रतिपादन करनेवाला होय सो प्रतिपादक होता है, जो प्रतिपादन करने के योग्य होय सो प्रतिपाद्य होता है। और अधिकारी का और फल का प्राप्य और प्रापक भाव सम्बन्ध है। फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है, जो वस्तु प्राप्त होय सो प्राप्य होती है जिसको प्राप्त होय सो प्रापक होय है। ग्रंथ का और ज्ञान का जन्य जनक भाव सम्बन्ध है। विचार द्वारा ग्रंथ ज्ञान का जनक है और ज्ञान जन्य है, जो उत्पन्न होय सो जन्य होता है और उत्पन्न करनेवाला जनक है इसी रीति से कर्त्ता कर्त्तव्य और आधार आधेय सम्बन्ध आदि अनेक सम्बन्ध जानलेना ॥

अब विषय कहते हैं—इस ग्रंथ में विषय ऐसा है कि निश्चय का वर्णन तो नाममात्र, बाकी शुद्ध अशुद्ध व्यवहार से सामायक प्रतिक्रमण देवयात्रा आदिक जिनाज्ञा शुद्ध व्यवहार तथा शुभ व्यवहार से वर्णन किया जायगा ॥

अब प्रयोजन वर्णन करते हैं—इस ग्रंथ का मुख्य प्रयोजन यह है कि भव्य जीवों को समकित की प्राप्ति और मिथ्यात्व की निवृत्ति होकर परम्परा सम्बन्ध से मोक्ष की प्राप्ति अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति हो।

अब अधिकारी का लक्षण कहते हैं—इस ग्रंथ का अधिकारी निकट भव्य जीव है सो अधिकारी का लक्षण विशेष करके तो हमने स्याद्वादानुभवरत्नाकर में लिखा है परन्तु किंचित् यहां भी दिखाते हैं। प्रथम जीव निगोद में से निकलकर भवस्थिति परिपाक होने से 'नदीघोल' न्याय करके संसार परिभ्रमण करता हुआ अकाम निर्ज्जरा के जोर से तिर्य्यंच पंचेन्द्री या मनुष्यभव में आवे और उस जीव के डेढ़ पुद्गल परावर्त बाकी रहे तब वह जीव मार्ग खोजना अथवा मार्ग भ्रमण अथवा मार्गानुसारी मार्ग प्राप्त इत्यादिक धर्म की किंचित् वाञ्छा से जिनोक्त मार्ग को श्रवण करने की इच्छा करे। परन्तु तीव्र भाव करके खोजना न करे उसको जिन शास्त्रों में मार्गपातित कहा है। और जब जीवका संसार में भ्रमण करना एक पुद्गल परावर्त रहे तब जीव जिन मार्ग की शुद्ध अशुद्ध गवेषणा (देखना) मात्र अर्थात् किंचिन्मात्र शुद्धि करे। इस रीति से करते २ जिस जीव को धर्म का यौवन काल आवे और न्याय सम्पन्न मित्रादिक दृष्टि च्यार तक प्राप्ति का अवसर होय ऐसे जीव को मार्ग अनुसारी कहते हैं। परन्तु इस जीव के षट् दर्शन की भिन्नता जाने और जिनोक्त मार्ग को व्यवहार में आदरे। इस जगह मिथ्यात्व मन्द पड़गया तिस से व्यवहार द्रव्य धर्म पामे। परन्तु समकित प्राप्त न होय। इस जगह ऐसे जीव को पहले तीन अनुष्ठान की प्रबलता होय तिससे सर्व क्रिया करे, उस क्रिया को देखकर अनेक जीव धर्म पावें परन्तु पोते न अर्थात् अपने को न होय। लेकिन उस क्रिया का फल स्वर्ग

आदि होय परन्तु निर्ज्जरा के अर्थ वह क्रिया सफल न होय। इसरीति से कल्पभाष्य आदि शास्त्रों में कहा है। अब इस जगह किंचित् तीन करणों का स्वरूप कहते हैं— १ यथा प्रवृत्ति करण २ अपूर्व करण ३ अन्यवृत्ति करण। इन करणों के करने से उपशम आदि समकित पाते हैं। प्रथम यथा प्रवृत्ति करण का स्वरूप कहते हैं कि जो सर्व कर्म की उत्कृष्ट स्थिति के बांधनेवाले हैं वे संक्लेश अर्थात् परिग्रह आदि तृष्णा अत्यन्त रूप होने से अथवा क्रोध आदि अत्यन्त कषाय आदि होने से यथा प्रवृत्ति करण नहीं कर सकते उक्तंच "विशेषावश्यके—उक्को सट्ठि नलइभयणाए एसुपुंव्वलद्धाए ॥ सव्वजहन्नठि सुवि नलब्भइ जयो पुव्व यडिवन्नो ॥ १ ॥" इसलिये कर्म्म की उत्कृष्ट स्थिति को बांधनेवाला जीव च्यार सामायक के लाभ को न प्राप्त होय और जो जीव सात कर्म की जघन्य स्थिति बांधनेवाला है सो तो गुणवंत जानना। इस रीति से जो जीव एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम पल्योपम से असंख्यातवें भाग ओछी स्थिति बंध करता होय वह जीव यथाप्रवृत्ति करण करे क्योंकि जिस जीव ने कर्मखपण रूप शक्ति न पाई होय सो शक्ति पामे तिसका नाम यथा प्रवृत्तिकरण कहिये। उक्तंच भाष्ये "येनअनादि संसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्त कर्म क्षपणं क्रियते ऽनेनेतिकरणं जीव परिणामेवोच्यते अनादिकालात् कर्मक्षपण प्रवृत्तावध्यवसाय विशेषो यथा प्रवृत्तिकरणमित्यर्थः।" क्षय उपशमी चेतना वीर्य से जानी है संसार की असारता जिसने अथवा संसार को दुःखरूप जानके परिग्रह शरीरादिक से उद्वेग उदासीनता परिणाम से सात कर्म की स्थिति एक कोड़ाकोड़ी पल्योपम का असंख्यातवां भाग कमती करके बाकी स्थिति राखे इसका नाम यथाप्रवृत्ति करण है। इन तीनों करणों का विशेष स्वरूप स्याद्वादानुभवरत्नाकर से

जानलेना । जो जीव समकित पाया हुआ अथवा समकित से पड़ा हुआ है वह इसका अधिकारी है अथवा मार्ग अनुसारी भी किंचित् अधिकारी है ॥

अब अधिकारी का लक्षण कहते हैं—विनय, विवेक, वैराग और मोक्ष की इच्छा ये चार चीजें जिस में हों सो जिज्ञासु है। विनय का अर्थ यह है कि गुरु की सेवा अर्थात् गुरु की आज्ञा में चलना, जो गुरु कहे सो करे। गुरु का लक्षण तो आगे कहेंगे परन्तु गुरु वही है कि जो हेय ज्ञेय उपादेय को समझाय कर आत्मा के स्वरूप को दिखलावे नतु लिंगमात्र, अथवा संसार के कृत्यादिक सिखलानेवाले। अब विवेक का अर्थ करते हैं कि "सत्याऽसत्य विचारशीलः इति विवेकः" सत्य को ग्रहण करना असत्य को छोड़ना नतु हठग्राहीपना अर्थात् गधे की पूंछ पकड़ कर अपने शरीर का नाश करना। यहां दृष्टान्त देते हैं कि एक साहूकार था वह बहुत धनवान था और उसके एक पुत्र था उस के विवेक कम था इस कारण से वह अपने पिता का कहना कम मानता था। जब उस साहूकार की आयु पूर्ण होने पर आई उस वक्त वह अपने पुत्र को बुलाकर कहने लगा कि हे पुत्र! अब तक तो तू मेरा कहना नहीं मानता था परन्तु अब मेरा अन्त समय है सो मैं तुझ को चार बातें कहता हूं उन चारों बातों को जो तू याद रखकर उन पर चलेगा तो तुझ को सुख होगा। सो तुझे मुनासिब है कि मेरे अन्त समय की शिक्षा मानकर इन चार बातों पर तू चले। वे चार बातें ये हैं—(१) मकान के गिर्द हाड़ों की बाड़ रखना (२) मीठा भोजन करना (३) घर से दूकान पर छाया मेंही आना और जाना (४) चौथी बात यह है कि पकड़ी चीज को नछोड़ना। इतना कह वह साहूकार परलोक

सिधाया और उसके पुत्र ने अपने पिता के क्रिया कर्म करने के बाद उसी वक्त महतरों को हुक्म दिया कि मेरी हवेली के चारों तरफ हाड़ों की बाड़ बनादो और घर के रसोईवालों को हुक्म दिया कि सिवाय मीठे भोजन के और कुछ रसोई में मत करो और गुमाश्तों से कहा कि घर से लेकर दूकान तक ऐसी चांदनी बांधो कि धूप न रहे। ये तीन काम तो उस साहूकार के पुत्र ने धन खर्च कर करलिये। उस साहूकार के लड़के को मीठा भोजन करने से अजीर्ण आदिक होने से वायु का प्रकोप होकर निद्रा बहुत आने लगी। एक दिन दूकान के किनारे पर बैठा था उस वक्त में कोई गधा बाजार में चरता हुआ उस दूकान के नीचे आया और वह साहूकार का पुत्र नींद से झोका खाने से दूकान के किनारे से नीचे गिरपड़ा उस वक्त और तो कुछ उसके हाथ में आया नहीं कि जिस से रुके परन्तु गधे की पूंछ उस के हाथ में आई। उसके पकड़तेही पिता की बात को याद करता हुआ कि मेरा बाप कहगया है कि पकड़ी चीज को न छोड़ना सो उस गधे की पूंछ को काठी करके पकड़ता हुआ। उस पूंछ को काठी पकड़ने से उस गधेने अपने पैरों से दुलत्ती मारना शुरू किया परन्तु उस साहूकार के पुत्र ने लातें खाना क़बूल किया लेकिन पूंछ छोड़ना न चाहा। आखिर को उस गधे की दुलत्ती लगते २ छाती माथा तमाम चोटों से घायल हुआ और बेहोश होकर जमीन पर गिरपड़ा आखिर को पूंछ हाथ से छूट गई। उस वक्त में अड़ोसपड़ोस के लोग सब इकट्ठे होगये और उस को सड़क से उठाकर दूकान पर रक्खा और शीतलोपचार किया उस को कुछ होश आया उस वक्त एक बुद्धिमान पुरुष कहने लगा कि सेठजी आपने यह क्या काम किया जिस से आप को इतना दुः-

ख हुआ? उस वक्त में वह साहूकार कहने लगा कि हे भाई! इस दुःख का कारण मेरा पिता है मैं नहीं, क्योंकि उस पिता ने मुझ को चार बातें (जो ऊपर लिख आये हैं उन का नाम लिया) कही थीं। तीन बातों में तो मुझे कोई दुःख नहीं हुआ परन्तु इस चौथी बात में आज मुझ को अत्यन्त दुःख हुआ सो इस में मेरा कुछ दोष नहीं किन्तु पिता के कहने से किया है। उस वक्त वह बुद्धिमान पुरुष कहने लगा कि हे सेठजी! तुम्हारे पिता ने जो तुम को शिक्षा दी थी सो तो अच्छी दी परन्तु तुम्हारी बुद्धि में न आई उस का यह फल है। क्योंकि देखो आप के पिता ने जो प्रथम बात कही थी कि हाड़ों की बाड़ रखना उसमें आप के पिता का ऐसा प्रयोजन था कि सब मनुष्यों से मेल रखना किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं करना वही हाड़ों की बाड़ है नतु हवेली के चारों तरफ जो बाड़ खड़ी है सो। दूसरे मीठे भोजन का अभिप्राय यह है कि जब खूब भूख लगे तब जो चीज खायगा सोही मीठी लगेगी और अग्नि भी तेज रहेगी और कैसाही आहार करो सब पच जायगा, नतु शीरा जलेबी लाडू आदिक। तीसरे घर से दूकान को छाया में आना और छाया में जाना इस कहने से उसका यह अभिप्राय था कि सूर्य उदय होने से पहिले दूकान पर जाकर बैठजाना और सूर्य अस्त होजाय उसके पीछे दूकान से आना इस कहने से उसका तात्पर्य यह था कि दिन भर दूकान में रहने से गुमाश्ते आदि मालिक के होने से कुछ ज़ाबेजा न कर सकेंगे और काम भी आंखों के लिहाज़ से सब अच्छी तरह करेंगे क्योंकि जो मालिक अपने काम को अपने सामने कराता है उस में गुमाश्ते आदिक भी चोरी नहीं कर सकते हैं इस अभिप्राय से कहा था नतु घर से लेकर दूकान तक चांदनी

बांधना। और पकड़ी चीज को न छोड़ना उस में उसका यह अभिप्राय था कि जो बात अच्छे आदमियों ने ग्रहण की है उस बात को पकड़कर न छोड़ना अथवा किसी का हाथ पकड़के कहे कि भाई! तू जब तक मेरे संग दगाबाजी आदि न करेगा तब तक तेरा संग न छोडूंगा अथवा जो इस लोक और परलोक में लाभकारी हो उस बात को पकड़कर न छोड़ना नतु गधे की पूंछ पकड़ना। इस का आशय यही है कि विवेकी पुरुष ऐसा नहीं करते हैं। जो कोई इस दृष्टान्त मूजिब है सो इस ग्रन्थ का अधिकारी नहीं॥

अब वैराग्य का अर्थ करते हैं कि संसार को असार जानकर पुत्र कलत्रादिक में ग्लानि लाकर उदासीन भाव से इन्द्रियों के विषय से जुदा होना नतु सिर मुण्डन जटा कोपीन मुद्रा से वैरागी नाम धरावे। अब मुमुक्षता का अर्थ करते हैं कि जन्म मरण आदि दुःख दूर होना और आत्म स्वरूप की प्राप्ति की इच्छा। ये अनुबन्धादिक चतुष्टय कहे। यहां कोई ऐसी शंका करता है कि आपने मंगल अथवा सम्बन्धादि कहे सो तो ठीक है परन्तु नवीन ग्रन्थ बनाने का प्रयोजन क्या है सो कहो॥

**समाधान—** इस नवीन ग्रन्थ के बनाने का यह प्रयोजन है कि जो लोग वर्त्तमान काल में इंग्रेजी फ़ारसी आदि पढ़े हैं वे तर्क बुद्धि से जैन मत के प्रवृत्ति मार्ग को देखकर धर्म विषय में अनेक तरह की शंका करते हैं, और उन लोगों की, कुल जाति धर्म में तो किंचित् बिना अन्तरंग रुचि के प्रवृत्ति होती है परन्तु उस धर्म में लाभकारण जानकर प्रवृत्ति नहीं। इसलिये युक्ति सहित जिनाज्ञा कारण कार्य्य दिखायकर उन लोगों को धर्म की इच्छा कराने की इच्छा से इस ग्रंथ

को रचा है। इसलिये इस ग्रन्थ का बनाना सफल है ॥

**शंका**— भला आगे के जो सूत्रादिक अर्द्ध मागधी भाषा में रचे हुए हैं और उन की संस्कृत में टीका और अच्छे २ आचार्यों के बनाये हुए प्रकरणादिक हैं उन से क्या उन को बोध न होगा, जो तुमने यह नवीन ग्रन्थ बनाया? इसलिये तुम्हारा यह नवीन ग्रन्थ बनाना निष्फल है ॥

**समाधान**—जो सूत्रादिक वास्ते कहा सो तो ठीक है परन्तु उन सूत्रों में जो अर्द्ध मागधी भाषा है उस का अर्थ वा उन को बांचना गृहस्थ को मना है लेकिन तौभी बहुत गृहस्थी लोग जैन मत की व्यवस्था बिगड़ने से बांचते हैं परन्तु उस अर्द्ध मागधी का गुरु-कुल-वास बिना यथावत् अर्थ मिलना बहुत कठिन है। क्योंकि देखो अर्द्ध मागधी का लक्षण लिखते हैं। श्रीहेमाचार्यजी ऐसा कहते हैं—"षट भाषा संयुक्त अर्द्ध मागधी" इस का अर्थ यह है कि जिस में ६ भाषा मिली हों उस का नाम अर्द्ध मागधी है। वे ६ भाषा ये हैं—१ संस्कृत २ प्राकृत ३ सूरसेनी ४ पिशाची ५ मागधी ६ अपभ्रंशा अर्थात् देश २ की भाषा। ये भाषा जिस में हों उस का नाम अर्द्ध मागधी है इसलिये जब तक ऊपर लिखी ६ भाषाओं का ज्ञान न हो तब तक सूत्र का अर्थ यथावत् न बैठेगा, इसलिये सूत्र बांचने से तो अर्थ की प्राप्ति न होगी। और जो तुमने कहा कि उन की संस्कृत आदि टीका है अथवा और आचार्यों के बनाये हुए प्रकरणादिक हैं उन से बोध होगा तो हम कहते हैं कि जिन आचार्यों ने उन सूत्रों की टीका बनाई है सो टीका उन बनानेवालों के वास्ते सुगम थी क्योंकि जो शब्द उन को कठिन मालूम पड़े उन की उन्हों ने संस्कृत में टीका रची है और जिस जगह

उन को सूत्र में सुगमता मालम हुई उस जगह सुगम ऐसा कहकर छोड़ दिया अर्थात् उस की टीका न बनाई। सो अब वे शब्द वर्त्तमान काल में बहुत कठिन होगये। और जो आचार्यों ने प्रकरण आदि मन्दबुद्धियों के वास्ते रचे थे सो अक्सर करके उन के रचेहुए प्रकरण मिलते ही बहुत कम हैं। जो कोई प्रकरण मिलता है तो उस के समझानेवाले गुरु नहीं मिलते इसलिये इस ग्रंथ का बनाना सप्रयोजन है॥

शंका—अजी भाषा के भी ग्रंथ तो बहुत मिलते हैं, क्या उन से उन लोगों को बोध न होगा क्योंकि अक्सर करके भाषा के ग्रंथ छापे के होने से प्राचीन और नवीन गुजराती व हिन्दी भाषा में बहुत मिलते हैं। क्या उन से बोध नहीं होगा तो तुम्हारे ग्रंथ से ही बोध होगा?॥

समाधान—जो तुमने कहा कि प्राचीन नवीन भाषा के ग्रंथ भी बहुत मिलते हैं सो ठीक परन्तु जो प्राचीन बुद्धिमान थे उन्हों ने अक्सर करके जो ग्रंथ भाषा में बनाये हैं उन में एक दो अनुयोग की विशेषता करके वर्णन किया है जिस में एक अनुयोग को मुख्य करके लिखा है और दूसरे को गौण करके किंचित् लिखा है। अन्य बातें जो जताई है सो भी दोहा, ढाल, स्तवन आदि कहके प्रकरण रचे हैं सो उन में मार्ग तो दिखाया है परन्तु सरल भाषा करके उन दोहे छन्द आदिक का अर्थ अथवा अपना अभिप्राय खुलासा न कहा। और जो नवीन ग्रंथों के बनानेवाले हैं उन्हों ने अपने २ पक्षपात से ग्रंथ में किसी ने निश्चयही को पुष्ट करके व्यवहार को उठाया है, और किसी ने उत्सर्ग मार्ग को अंगीकार करके ग्रंथ रचा है, किसी ने अपवाद मार्ग को ही पुष्ट करके ग्रंथ रचा है इसलिये उन ग्रंथों की भिन्न २ प्रक्रिया देखने से जिज्ञासु को उलटे सन्देह पैदा होते हैं। तो जहां

सन्देह पैदा होता है उस जगह बोध होना ही असम्भव है। कितनेही ग्रंथों के रचनेवाले ऐसे बुद्धिमान हैं कि जिन्हों ने सूत्र टीका में लिखा है उस की भाषा बनाय कर खाली अपना नाम किया है, कितनेही लोग अपनी बुद्धि अथवा पण्डितों की सहायता से केवल अपना नाम करने के वास्ते ग्रंथ बनाते हैं परन्तु उन ग्रंथों के देखने से जिनाज्ञा से विरुद्ध और अशुद्ध मार्ग की पुष्टि होने के सिवाय कुछ बोध होने का कारण नहीं मालूम होता है। इसलिये इस ग्रंथ का बनाना सप्रयोजन है ॥

**शंका**— अजी इस ग्रंथ में विनय विवेक आदि जो अधिकारी के साधन कहे हैं सो साधन कठिन हैं इसलिये अधिकारी अपने में साधन के न होने से ग्रंथ में प्रवृत्ति की इच्छा न करेगा इसलिये ग्रंथ का रचना निष्प्रयोजन है ॥

**समाधान**—यह तुम्हारा कहना एकान्त ठीक नहीं क्योंकि हम तुम से पूछते हैं कि बहुत अधिकारी नहीं हैं अथवा कोई अधिकारी नहीं है ? जो तुम कहोगे कि बहुत अधिकारी नहीं हैं सो तो तुम्हारा कहना ठीक है, हमभी अंगीकार करते हैं। और जो तुम कहो कि कोईभी नहीं है, यह कहना तुम्हारा असम्भव है। क्योंकि देखो सर्वज्ञ का ऐसा वचन है कि "हुण्डा सर्पिणी इस पंचम काल में एकभवतारी भी हैं और बहुत भव्य जीवों को इसी काल में समकित की भी प्राप्ति होगी"। इसलिये जो भव्य जीव आत्मार्थी तत्व-रसिक होगा सोही इस का अधिकारी है। क्योंकि इस ग्रन्थ में कारण कार्य शुद्ध अशुद्ध जिनाज्ञानुसार जो व्यवहार, उस व्यवहार से युक्ति सहित कारण से कार्य उत्पन्न होता है उन्हीं बातों का प्रतिपादन किया जायगा।

क्योंकि देखो वर्त्तमान काल में कितनेही लोगों ने कारण को कार्य कहकर उस का समझानाही उठा दिया है और जिस कारण से कार्य्य उत्पन्न होता है उस कारण को छोड़कर केवल कार्य को पकड़कर बैठ गये हैं और आपस में विवाद आदि करके झगडा मचाते हैं। कितने ही लोग कारण को ही कार्य मानकर आपस में विवाद करते हैं और अपने२ पक्ष को खैंचकर नवीन गन्थ बनायकर, छापे द्वारा प्रसिद्धकर अपनी २ पण्डिताई को प्रगट करते हैं। सो इस से लोगों को बोध तो होना अलग रहा परन्तु भ्रम होकर अविश्वास होजाता है। इसलिये श्रीजसविजयजी उपाध्यायजी सवासौ गाथा के स्तवन में कहते हैं, पहिली ढाल की दशमी गाथा "बहु मुखे बोल एम सांभली नवि धरे लोक विश्वासरे । ढूंढता धर्मने ते थया भमर जेम कमल निवासरे" ॥ इस गाथा का अर्थ तो सुगम है परन्तु आगे व्यवस्था कहने में इस का अर्थ कहेंगे। ऐसे २ पूज्यों के वाक्य को समझकर और वर्त्तमान काल की व्यवस्था किंचित् देखकर जिन-धर्म के अनुराग से हुआ जो अनुभव, तिस अनुभव में किंचित् करुणा से जिज्ञासुओं के लाभ के वास्ते जिन-मत जो अनादि शुद्ध आत्म-स्वरूप दिखानेवाला है उस में उत्पन्न तीर्थंकर आदि सर्वज्ञ देव, उनके मुखारविंद से अमृत रूप जो वचन भाषा वर्गणा से जो प्रगट हुए, उन वचनों में जो चार प्रकार के अनुयोग कहे, उन अनुयोगों में कारण और कार्य जिस रीति से कहे हैं उसी रीति से, कहकर युक्ति सहित जिज्ञासु को बोध कराना है। और वर्त्तमान काल में अशुद्ध प्रवृत्ति होने का कारण दिखायकर पीछे से जिनाज्ञा सहित कारण कार्य से धर्म की व्यवस्था कहेंगे क्योंकि जब तक जिज्ञासु कारण को नहीं जानेगा तब तक उस की कार्य में

वाक्य को सुनकर मन में सन्देह उत्पन्न करके विचारने लगे कि भगवान श्रीमहावीर स्वामीजी कहते हैं कि जो काम करने को विचारे सो किये के समान है अथवा करने का प्रारंभ करे सोभी किये के समान है। क्योंकि श्रीभगवान कहते हैं कि "कर माने करिये चल माने चलिये बुण माने बुणिये" इत्यादि वाक्य जो सर्व मिथ्या है क्योंकि जब सर्व कार्य पूरा होजाय तब जानो कि किया क्योंकि देखो प्रत्यक्ष में आसन का प्रारंभ कराया परन्तु पूरा न हुआ इसलिये प्रत्यक्ष भगवत का वाक्य मिथ्या है। ऐसा विचार अपने मन में दृढ़ करके सर्व साधू साध्वी जो अपने साथ में थे उन को अपनी परूपना दृढ़ कराने के वास्ते कहने लगा कि मेरा कहना ठीक है, भगवान श्री महावीर स्वामीजी का कहना ठीक नहीं। सो उस वाक्य को सुनकर कितनेक साधुओं ने तो उसके वाक्य को अंगीकार किया और कितनेही साधुओं ने उसके वाक्य को अंगीकार नहीं किया और समझाया कि भगवान का वाक्य सत्य है सो तुम अंगीकार करो। जब उस जमालीजी ने उन साधुओं के वाक्य को अंगीकार नहीं किया और अपने बचन को नहीं छोड़ा और अपने वचन के कदाग्रह को दृढ़ कर लिया तब वे साधू लोग उस जमाली को छोड़ भगवान के पास चले गये। परन्तु १००० साध्वियां उस जमाली के वाक्य के ऊपर विश्वास करके भगवान के वाक्य को झूठ जानकर बिचरने लगीं। एक दिन ढंग कुंभार की शाला में आयकर उतरीं सो उसने उन साध्वियों के प्रतिबोधने के लिये वस्त्र के कोने पर अग्नि रखदी तो साध्वी कहने लगी मेरा वस्त्र जलगया उस समय उस कुंभार ने कहा कि हे साध्वी तुम्हारे मत में तो यह बात है नहीं क्योंकि जब सम्पूर्ण वस्त्र

जलजाय तब तुम को कहना था कि हमारा वस्त्र जलगया क्यों कि तुम्हारे मत से तुमको मिथ्या वाक्य लगता है इस लिये तुम को न कहना चाहिये, अभी तो सम्पूर्ण एक पल्ला भी नहीं जला। इस युक्ति को सुनकर उनको प्रतिबोध हुवा और वे भगवान श्री महावीर स्वामीजी के पास चली गई और मिथ्या दुक्कड़ देकर शुद्ध होकर अपनी आत्मा का अर्थ करने लगीं। परन्तु उस जमाली ने अपने वाक्य रूप कदाग्रह को न छोड़ा और क्रिया कलाप और बेला तेला आदि करके अन्त समय में एक महीने का अनसन करके शरीर को छोड़कर लान्तक देवलोक में किलमिषी देवता हुआ और १३ सागरोपम की आयु भोगकर बहुत संसार रुलेगा। यह प्रथम निन्नव हुवा॥

अब दूसरे निन्नव का हाल सुनो कि जमाली से २ वर्ष पीछे अर्थात् भगवान श्रीमहावीर स्वामीजी के केवल ज्ञान उत्पन्न हुए के १६ वर्ष बाद दूसरा निन्नव उत्पन्न हुआ सो उसका वृन्तान्त यों है:— राजगिरी नगरी में गुणशिला चैत के विषय श्रीवसुनाम आचार्य्यजी का शिष्य त्रगुप्त एकदा परिवाद पूर्व का अलावा पढ़ता हुआ विचरने लगा सो अलावा लिखतेहैं— "एके भन्ते जीवप्पएसे जीवेत्तिवचव्वंसि-आणोय णट्ठेसमट्ठेएवन्दोजीवपएसे तिन्निसंखिज्जाअसंखिज्जावा वाजावएगा पएसे णविअणन्तो जीवत्तिवचव्वंसिआणोय णट्ठेसमट्ठेएवंदो जीवयएसे ति-न्निसंखिज्जाअसंखिज्जा तम्होकितणेपडिपुन्ने लोगागासपएसतुल्लपएसे जीवे-त्तिवचवंसियाए" इत्यादि ॥

अर्थ—यद्यपि सर्व जीव प्रदेश एक प्रदेश करके हीन जीव न्यारा नहीं दीखता है तथापि अन्त का एक प्रदेश जीव है नतु भिन्न २ स्यात् ऐसा कहता हुआ। इस रीति से उस के जी में

भावना हुई । एक दिन अमलका नगरी के विषय गया सो एक मित्र श्री श्रावक ने उस को प्रतिबोधने के अर्थ नौता दिया और घर पर लेगया । उस वक्त उस श्रावक ने मोतीचूर के लड्डू का एक खेरा परमाणु रूप उस के पात्र में रखदिया । ऐसेही सेव के लाड्का एक परमाणु रखदिया । ऐसेही जो वस्तु उस के घर में तयार थी सो सब में से एक २ परमाणु रखदिया । फिर हाथ जोड़ कहने लगा कि महाराज मैं आपको संपूर्ण वस्तु बहरायकर कृतार्थ होगया । उस वक्त में वह साधू कहने लगा कि भाई ऐसी तूने क्या चीज़ बहराय दी जिस से तू कृतार्थ होगया ? उस वक्त में वह श्रावक कहने लगा कि महाराज आप के मत से तो सम्पूर्ण वस्तु बहरायदी क्योंकि आप का मत तो ऐसा है कि अन्त का प्रदेश है सो जीव है नतु सर्व प्रदेश वाला जीव । इसलिये मैंने भी सर्व वस्तुओं का अन्त २ का प्रदेश बहराय कर सर्व वस्तु बहराय दी सो आप के मत से सम्पूर्ण वस्तु दी, नतु श्री वर्द्धमान स्वामीजी मतानुसारेण । इस श्रावक की युक्ति को सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हुआ और गुरु को मिथ्या दुक्कडं देकर शुद्ध होगया । यह दूसरा निन्नव हुआ ॥

अब तीसरे निन्नव का वृत्तान्त लिखते हैं कि श्री महावीर प्रभुजी के निर्वाण से २१४ वर्ष पीछे स्वेताम्बिका नगरी पोलाष उद्यान के विषय श्री आषाडाचार्य्यजी ने अपने शिष्यों को आषाढ जोग बहाना शुरू किया परन्तु शूल के रोग से अकस्मात शरीर को छोड़कर स्वर्ग में देवता हुए उस वक्त देवपने में उपयोग देकर अवधि ज्ञान से देखते हुए कि मैंने मेरे शिष्यों को जोग बहाना शुरू किया था परन्तु उनका जोग पूरा न हुआ और कोई करानेवाला भी उस वक्त उनकी नज़र

में न आया तब आपही उन शिष्यों के स्नेह से उसी देह में प्रवेश करके उनको सम्पूर्ण जोग की क्रिया कराई। जब वह जोग की क्रिया सम्पूर्ण होगई तब एक शिष्य को आचार्य्य पद देकर अपना जो सर्व वृत्तान्त था सो सम्पूर्ण कहकर उस शरीर को छोड़कर देवलोक चले गये। उस वृत्तान्त को सुनकर उन के शिष्यों को ऐसा विकल्प उत्पन्न हुआ कि अव्यक्त मत है क्योंकि न तो मालूम होवे कि यह देवता है न मालूम होवे कि यह साधू है। जब मालूम नहीं तो वन्दना किस को करें ? जो कदाचित् वन्दना करें और उस शरीर में देवता होय तो अवृत्ति की वन्दना होवे इसलिये किसी को वन्दना न करना। सो उन सर्व शिष्यों ने आपस में वन्दना व्यवहार छोड़दिया और विचरते हुए एक दिन राजगिरी नगरी में आये। उस राजगिरी नगरी का राजा सूर्यवंश का धारण करनेवाला बलभद्र नाम करके जिन-मत का परम श्रावक था। उस राजा ने उन साधुओं को बोध कराने के अर्थ चोर है ऐसा कहकर पकड़कर मारने लगा। उस वक्त वे साधू कहने लगे हे राजन् ! तूतो परम श्रावक है और हम साधू हैं। किस वास्ते हम को मारता है ? उस वक्त राजा कहने लगा कि तुम ऐसा मत कहो क्योंकि तुम्हारा मत अव्यक्त है उस के अनुसार तो न मालूम तुम साधू हो अथवा चोर हो और मैं श्रवणोपासक हूं या नहीं। इत्यादि युक्ति सुनकर वे साधु प्रतिबोध को प्राप्त हुए॥

अब चतुर्थ निन्हव का वृत्तान्त लिखते हैं कि श्रीमहावीर स्वामीजी से २२० वर्ष पीछे मिथला नगरी लक्ष्मीगृह उद्यान के विषय श्रीमहागिरीजी के शिष्य "कोडिन्य" थे उनके शिष्य अश्वमित्र "अन्यदाऽनु प्रवाद पूर्वस्य नैपुणिक नामक वस्तु पठन

इममालापकं पठितवान" "यथा सव्वे पडुपन्नने रइया कुच्छिज्जिस्सन्ति एवं जाववे माणियन्ति एतदालापकार्थमसौ इत्थं विचारितवान" सो वह शिष्य इस गाथा को पढ़कर विचार करने लगा कि नरक को आदि लेकर जो जीव हैं सो सर्व क्षण विनाशी हैं अर्थात् उस ने क्षणक मत अंगीकार किया और उसही की परूपणा करने लगा। एक दिन राजगिरी नगरी में गया सो उस राजगिरी नगरी में शौक्लिक उस साधू को मारने लगा उस वक्त वह साधू कहने लगा कि तू श्रावक होकर मुझको क्यों मारता है? मैं तो साधू हूं। उस वक्त वह श्रावक कहने लगा कि तुम्हारे मत में तो मेरा जो श्रावकपना था सो उसी क्षण में चला गया और जिस क्षण में मैंने तुम्हारा साधूपना देखा था उसी क्षण से वह साधूपना नष्ट होगया अब तो मैं और आप नवीन उत्पन्न होगये क्योंकि जो मैंने देखा था और तुमने देखा था सो तो दोनों का देखा हुआ तुम्हारे मत के अनुसार नष्ट होगया अब तो कोई नवीन है। ऐसी युक्ति उस श्रावक की सुनकर वह प्रतिबोध को प्राप्त हुआ॥

अब पांचवें निन्नव का वृत्तान्त लिखते हैं कि भगवान श्री महाबीर स्वामीजी से २२८ वर्ष पीछे उल्लका नदी के किनारे पर एक खेटक बनपुरे उल्लकात्तीता नाम करके बन था उस जगह श्रीमहागिरीजी का शिष्य उसी नदी के तीर पर रहता था और उन का शिष्य गंगाचार्य्य पूर्व तीर पर रहता था। सो वह श्रीगंगाचार्य्य गुरु को वन्दना करने के लिये दूसरे तीर पर जाने लगा। उस वक्त में नदी उतरती दफा माथे पर केश नहीं होने से सूर्य की तपत से माथा बहुत तपने लगा और नीचे से नदी के जल से पगों

को शीतलता प्राप्त हुई। उस वक्त विचारने लगा कि दो क्रिया एक समय में मैं अनुभव करता हूं और श्रीभगवान कहते हैं कि "नत्थी एक समय दो उपयोगा" यह श्रीभगवान का वचन ठीक नहीं। मैं प्रत्यक्ष दोनों क्रियाओंका शीतलता और उष्णता का अनुभव करता हूं। ऐसा विचार करता हुआ गुरु के पास पहुंचा और अपना अनुभव कहने लगा। उस वक्त श्रीआचार्य्यजी ने बहुतही युक्ति करके समझाया परन्तु न माना और अपनी परूपना सब जगह करने लगा। एक दिन राजगीरी नगरी के विषय वीरप्रभोधाने मनी नायक यक्ष के मन्दिर में उतर कर लोगों के सामने व्याख्यान देने लगा कि एक समय में दो क्रियाओं का अनुभव होता है। उस वक्त यक्ष ने क्रोधित होकर मुगदर उठाय कर डराया और मारने को तैयार हुआ और कहने लगा कि अरे दुष्ट! मैंने श्रीभगवान महावीर स्वामी से इसी जगह सुना है कि एक समय में दो क्रिया का अनुभव नहीं होता क्योंकि वह समय अत्यन्त सूक्ष्म है। क्या तुझ को भ्रम होगया है? क्या तू श्रीमहावीर स्वामीजी से अधिक है? ऐसा उस यक्ष ने उसे डराकर प्रतिबोध दिया॥

अब छठे निह्नव का अधिकार कहते हैं कि भगवान श्रीमहावीर स्वामीजी के ५४४ वर्ष पीछे अन्तरिञ्जिका पुरी में गृहचैत्य के विषय श्रीगुप्त नामी आचार्य्य उतरे थे उन का शिष्य रोहगुप्त उनकी वन्दना के अर्थ किसी निकट के गांव से आता हुआ। उस वक्त उस शहर में एक संन्यासी लोहे का पाटा पेट से बांधे हुए और एक जामुन की शाखा हाथ में लिये हुए उस वस्ती में आया और जो कोई उस से पूछता कि लोहे का पाटा क्यों बांधा है तो वह जवाब देता

कि मेरा पेट विद्या से इतना भरा है कि मैं जो पाटा नहीं बांधूं तो मेरा पेट फट जावे और जामुन की शाखा इसलिये हाथ में रक्खी है कि इस जम्बूद्वीप में मेरे से वाद करनेवाला कोई नहीं रहा। इस रीति से कहता हुआ राजसभा में पहुंचा उस वक्त राजा ने उसे देखकर उस का सन्मान करके बैठाया और अपने शहर में ढोल बजवाया कि कोई ऐसा शख्स है जो इस संन्यासी से विवाद करे । उस वक्त में रोहगुप्त ने ढोल पर हाथ धरकर विवाद अंगीकार किया और कहा कि श्रीगुरुजी को नमस्कार करके मैं विवाद करने को आता हूं । इतना कहकर गुरुजी के पास पहुंचे और गुरु को वन्दना कर कहने लगे कि श्रीमहाराजजी ! मैं ने उस संन्यासी से वाद करना अंगीकार किया है । गुरु इस बात को सुनकर कहने लगे कि हे आर्य्य ! यह काम अच्छा नहीं किया क्योंकि अपने विवाद करने से क्या प्रयोजन है परन्तु जैसा तुम्हारे को भला हो सो करो । फिर गुरु ने ज्ञान से उपयोग दिया तो क्या देखते हैं कि उस संन्यासी के पास सात विद्या हैं नकुल की विद्या १ सर्प की विद्या २ ऊंदरे की विद्या ३ मृग की विद्या ४ सूअर की विद्या ५ काग की विद्या ६ पंखी की विद्या ७ इन सातों विद्या को घात करनेवाली दूजी ७ विद्या श्रीगुरुजी ने उसे दी मोर विद्या १ नकुल की विद्या २ बिलाड़ी की विद्या ३ बाघ की विद्या ४ सिंह की विद्या ५ गरुड़ की विद्या ६ बाज पंखी की विद्या ७ ये सात विद्या और आठवां अपना ओघा दूसरे काम निवारने के वास्ते दिया । उस वक्त ये सब चीजें अंगीकार करके वह रोहगुप्त गुरु की आज्ञा पाकर राजसभा में आया । उस वक्त उस संन्यासी ने देखकर विचारा कि यह जैनी है सो

संस्कृत भाषा तो बोलना नहीं इसलिये इस के जिनधर्म की बात कहूं सो यह जैन मत की बात को उथापेगा नहीं अर्थात् खण्डन नहीं करेगा इसलिये मुझ को इस के ही मत की बात करना ठीक है। ऐसा विचार कर कहने लगा कि संसार में दो पदार्थ हैं एक पुण्य दूसरा पाप; एक रात्री दूसरा दिवस; एक आकाश दूसरी धरती; एक जीव दूसरा अजीव इस रीति से दो पदार्थ के सिवाय कोई तीसरा पदार्थ नहीं। इस वाक्य को सुनकर उसीवक्त श्रीरोहगुप्तजी बोलतेहुए कि संसार में पदार्थ तीन हैं भूत, भविष्यत, और वर्त्तमान; स्वर्ग, मृत्यु, पाताल; आदि, मध्य अन्त; जीव,अजीव,नोजीवः इत्यादि जगत में तीन पदार्थ हैं। इस रोहगुप्त के वाक्य को सुनकर वह संन्यासी कहनेलगा कि नोजीव किस रीति से? तब रोहगुप्त कहने लगा कि देखो विसमरा अर्थात् छिपकली की पंछ कटजाय उस वक्त वह पूंछ तड़पती है अर्थात् हिलती है इसको जीवभी नहीं कह सकें और अजीव कहें तो उसका हिलना नहीं बने और दूसरा उसी वक्त एक डोरे को बल लगाकर सभा में पटका उस वक्त वह डोरा हिलने लगा। तब कहने लगा देखो यह जीव अजीव दोनों में से कोई नहीं इसलिये नोजीवः। इस रीति से तीन पदार्थ जगत में हैं। उस वक्त इस वाक्य से बन्द हुआ तब वह संन्यासी विद्या छोड़ने लगा इधर से यह भी श्रीगुरु की दीहुई विद्या से लड़ने लगा आखिर को रोहगुप्त जीतकर बड़े ठाठ से गुरु के पास आया और अपना वृत्तान्त सब श्रीगुरु को सुनादिया॥

तब गुरु ने कहा कि अच्छा किया परन्तु जिनशासन में सर्वज्ञ देव ने राशि दो प्रतिपादन की हैं इसलिये तू राजसभा में जाय कर तीन राशि स्थापन करनेका मिथ्यादुष्कडं दे।उस वचन को सुनकर रोहगुप्त कहने

लगा कि जिस सभा में मैं ने तीन राशि स्थापी हैं उस सभा में मैं अपने वचन को झूठा क्योंकर कहूं ? फिरभी गुरु ने कहा कि इस में कुछ दोष नहीं है क्योंकि तू ने उस का मान उतारने के वास्ते तीन राशि स्थापी थीं सो तुझ को मिथ्या दुक्कडं देने में कुछ लज्जा नहीं परन्तु उसने गुरु का वाक्य न मानकर और दिल से ढिठाई की व गुरु के सामनेही कहने लगा कि जगत में तीन राशि हैं तव गुरु उस को समझाने के वास्ते राजसभा में गये और राजा को साक्षी करके विवाद करने लगे और छः महीना तक वाद हुआ जिस में चार हजार चारसौ (४४००) प्रश्नोत्तर हुए परन्तु उस ने अपना हठ न छोड़ा। तब राजा ने देखा कि इन का तो विवाद मिटना कठिन है तव गुरु से कहने लगा कि महाराज मेरा तो राज का काम वन्द होगया इसलिये इस विवाद को समेटो। तब गुरु महाराज उस रोहगुप्त को लेकर 'कुत्रकाहट्टे' अर्थात् जिस दूकान पर सर्व वस्तु मिले उस की दूकान पर राजसभा के आदमियों के संग पहुंचे और उस दूकानदार से कहा जीवराशि की वस्तु दे उस ने उसी चीज को उठाकरके दिखाया फिर कहा कि अजीव राशि की वस्तु दे तब उस ने घट पटादिक वस्तु को दिखाया फिर श्रीगुरुमहाराज बोले नोजीव राशि दे तब वह दूकानवाला बोला कि महाराज जगत में दो राशि के सिवाय तीसरी राशि हैही नहीं तो मैं कहां से दूं? इस रीति से उस को समझाया परन्तु उस रोहगुप्त ने अपने हठ को न छोड़ा तब गुरु ने उस को छठा निन्हव ठहराकर गच्छ के बाहर किया। उसी रोहगुप्त से वैशेषिक मत चला है और उस ने ६ पदार्थ की परूपना की। यह छठा निन्हव हुआ ॥

अब सातवें निन्हव का वृत्तान्त लिखते हैं। श्रीवीर भगवान के

५८४ वर्ष पीछे दसपुर नगर में इच्छुग्रहोद्यान के विषय श्रीआर्य्य रक्षित सूरि आये। उन के तीन शिष्य एकतो (१) गोष्टामाहिल (२) फाल्गुरक्षित (३) दुर्बलिका पुष्प थे। उस वक्त में मथुरा नगरी के विषय अक्रियावादी का जोर बहुत हुआ और उस का प्रतिवाद करने के वास्ते उस जगह कोई नहीं था तब संघ ने मिलकर श्रीआर्य्य रक्षित सूरिजी को खबर दी उस वक्त गोष्टामाहिल को वाद की लब्धि देकर भेजा और उस ने जायकर उन को जीता तब मथुरा के श्रावक विनती करके चार महीने चौमासे के वास्ते रखते हुए। इधर में श्रीआर्य्यरक्षित सूरिजी ने अपना आऊखा निकट जाना जब स्वपाट पर बैठाने के लिये विचारने लगे कि तीनों में से किस को पाट देऊं— बूढोगणहर सद्दोगोअममाईहिं धीरपुरिसेहिं जोतंठवेइ अपत्ते जाणंतोसोमहापावे॥ इस गाथा को विचार कर सर्व संघ को बुलाय कर उन के सामने आर्य्यरक्षित सूरिजी महाराज कहने लगे कि मैं ने गोष्टामाहिल को तो घी के घड़े के समान विद्या पढ़ाई है जैसे घीसे भरा घड़ा हो और उसे उलटा करें तो घी निकले परन्तु बहुत बिन्दु उस में चिपके रहजांय अर्थात् मैं ने उस को पढ़ाया है परन्तु बहुत विद्या उस को मेरे पास से न मिली। फाल्गुरक्षित को मैं ने तेल के घड़े के समान विद्या दी है जैसे तेल के घड़े को औंधा करे तो थोड़ासा तेल रहे इस रीति से मैं ने उसे पढ़ाया है कि थोड़ीसी विद्या मेरे पास रही बाकी उसे दी है। और दुर्बलिका पुष्प को मैं ने धान के घड़ेवत् पढ़ाया है कि जैसे धान के घड़े को उलटा करे तो उस में किञ्चित दाना भी न रहे। इसलिये मेरी कुल विद्या इस के पास है मैं ने अपने पास कुछ भी न रक्खी। ऐसा जब श्रीआर्य्य रक्षित सूरिजीने कहा तब सर्व

संघ कहने लगा कि हे भगवन दुर्बलिकापुष्यजी को ही आचार्य्य पद देना चाहिये क्योंकि जैसे आपकी सर्वविद्या के योग्य यह हुए तैसेही आपके पाटकीभी योग्यता इनही को हैं। ऐसा संघ का वचन सुनकर दुर्बलिका पुष्प जी को सूरि-पद देकर अपने पाट पर बैठाकर गुरु कहने लगे कि हे वत्स ! जैसे मैं ने फाल्गुरक्षित और गोष्टामाहिलादिकों की सार संभार रक्खी है तैसेही तुमभी उन की सार संभार रखना। और फाल्गु रक्षितादिकों से भी कहने लगे कि हे आर्यो ! जैसे तुम मेरी सेवा करते थे उसी रीति से दुर्बलिकापुष्प की सेवा करना क्योंकि मैं तो तुम्हारी सेवा नहीं होती तो भी रोष न करता परन्तु जो तुम इस की आज्ञा न मानोगे तो यह क्षमा न करेगा इसलिये तुम को चाहिये कि मेरे समान इस को समझो। ऐसा दोनों तरफ समझाकर अनसन करते हुए और आयु, सम्पूर्ण करके देवलोक को प्राप्त हुए। उधर गोष्टामाहिल ने भी सुना कि गुरु देवलोक को प्राप्त हुए तब जल्दी से चलकर उस दसपुर नगर में आया और लोगों से पूछने लगा कि आचार्य्यपद किस को मिला ? तब लोगों ने गुरु के दृष्टान्त को सुनाकर कहा कि दुर्बलिका पुष्प को गणधर पद मिला। ऐसा सुनतेही मान के वश होकर गोष्टामाहिल जुदे उपासरे में जायकर उतरा और थोड़ीसी देर ठहरकर वस्त्रादि धरकर दुर्बलिकापुष्प जिस उपासरे में ठहरे थे उस उपासरे में आया। उस वक्त गोष्टामाहिल को देखकर सर्व साधू उठे। उस वक्त आचार्य ने कहा कि तुम जुदे उपासरे में क्यों ठहरे हो ? क्या इस जगह उतरने की तुम्हारी इच्छा नहीं है ? बस इतना सुनतेही गोष्टामाहिल उस उपासरे से निकल कर जहां पाहिले ठहरे थे वहां आगये और जुदे ठहरे हुए लोगों को भ्रम में गेरतेहुए। परन्तु

उस के वचन पर किसी ने प्रतीति न धरी। एक दिन दुर्बलिकापुष्पजी आचार्य ने अर्थपौरुपी करने के ताईं सर्व साधुओं को बुलाया परन्तु गोष्टामाहिल उस जगह नहीं आया और न सुनी। तब उन आचार्य के एक शिष्य ने उन से अष्टमें कर्म प्रवाद पूर्व में जो कर्मों की परूपना की थी कि जीव के कर्म किस माफिक बंधता है प्रश्न किया। उस वक्त वे आचार्य कहते हुए कि "बद्ध १ स्पृष्ट २ निकाचित ३" इस भेद करके आत्मा के कर्म का बंध होता है। इस की चर्चा तो चौथे कर्म ग्रंथ में है परन्तु प्रथम जीव के राग द्वेष परिणाम से कर्म बंधता है—सो बद्ध तो उसे कहते हैं कि जैसे सूत के तंतु लपेटे हुए। निकाचित उसे कहते हैं कि जैसे तंतु कूट करके आपस में एकसां मिला दिये हों और स्पृष्ट उसे कहते हैं जो उदय में आयकर भोगे। सो निकाचित कर्म तो क्षीर नीर न्याय करके अथवा तप्त लोहे के समान है। इस रीति से आचार्य ने उस को उत्तर दिया तब निकटके उपासरे में रहते हुए गोष्टामाहिल ने भी सुना और उस जगह आयकर कहने लगा कि मैं ने गुरु से ऐसा नहीं सुना है क्योंकि जब कर्म बद्ध स्पृष्ट निकाचित होगा तो मोक्ष न होगी। ऐसा जब उस शिष्य ने गोष्टामाहिल से सुना तब कहने लगा कि कर्म जो जीव से लगा है सो स्पृष्ट निकाचित किस रीति से लगता है सो कहो? तब गोष्टामाहिल कहने लगा कि कंचुकी अर्थात् अंगरखी शरीर से स्पर्श करती है तैसेही कर्म आत्म प्रदेश से स्पर्श करता है नतु क्षीर नीर न्यायेन। तब वह शिष्य गोष्टामाहिल से कहने लगा कि दुर्बलिकापुष्प आचार्य पूर्व कही हुई रीति को कहते हैं। तब गोष्टामाहिल कहने लगा कि वह तुम्हारा आचार्य इस रीति को नहीं जानता है। तब फिर वह शिष्य श्रीसूरि महाराज से जाकर कहने

लगा कि गोष्टामाहिल ऐसा कहते हैं। तब गुरु महाराज कहने लगे कि उस का वचन असत्य है जैसा मैं ने कहा है तैसाही गुरु महाराज कहते थे और उस जगह उस शिष्य के समझाने को दृष्टान्त देकर समझाने लगे कि जैसे लोहे का पिंड अग्नि में धरकर गर्म किया जाय तो लोहे का तमाम पिंड अग्नि रूप होजाय तैसेही जीवभी कर्मों के सम्बन्ध से वैसाही हो जाता है। इत्यादिक युक्ति समझाई परन्तु गोष्टामाहिल ने न माना। फिर एक दिन के समय नवमें पूर्व प्रत्याख्यान के विषय गुरु साधुओं को ऐसा पाठ पढ़ाते हुए कि "साहणं जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं पाणाइवायं पच्चक्खामि" इस रीति से पच्चक्खाण का व्याख्यान आचार्य ने शिष्यों को बताया। इस व्याख्यान के ऊपर गोष्टामाहिल कहने लगा कि "जावज्जीवाए" ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि पचक्खाण का भंग होगा। जाव जीव परलोक में जायगा तब उस का पचक्खाण भंग होजायगा इसलिये पचक्खाण ऐसा करना चाहिये कि जिस से परलोक में भी भंग न होय। उस की रीति यह है कि "सव्वपाणाइवायं पच्चक्खामी अपरिमाणाए तिविहं तिविहेणं एवं" इस रीति से पचक्खाण करने में कोई दूषण नहीं। ऐसा जब गोष्टामाहिल ने कहा तब साधुओं ने श्रीआचार्य महाराज से प्रश्न किया कि गोष्टामाहिल पचक्खाण के वास्ते ऐसा कहता है। उस वक्त आचार्य महाराज कहने लगे कि पचक्खाण का भंग नहीं होता क्योंकि "जावज्जीव" ऐसा कहने से इस भव आश्रय नतु परभव आश्रय। ऐसा जब श्रीदुर्बलिकापुष्प आचार्य ने कहा तब फाल्गुरक्षित को आदि लेकरके जितने स्थिवर साधु थे सर्व ने अंगीकार किया और कहने लगे कि आपने कहा सो ही तीर्थंकरों की आज्ञा है।

और गोष्टामाहिल जो कहता है सो ठीक नहीं। और स्थिवर साधुओं ने गोष्टामाहिल को समझाया परन्तु उस ने न माना। तब समस्त संघ ने शासन देवी का आराधन किया और शासन देवी आई और कहा कि तुम्हारा क्या काम है ? तब समस्त संघ बोला कि तुम श्रीमन्दिर स्वामीजी के पास जाओ और श्रीभगवान से पूछो कि दुर्वलिकापुष्प आचार्य कहते हैं सो वचन सत्य है या गोष्टामाहिल कहता है सो ठीक है ? तब शासन देवी महाविदेह क्षेत्र में श्री-मन्दिर स्वामीजी के पास गई और भगवान से पूछा तब भगवान कहने लगे कि गोष्टामाहिल कहता है सो असत्य है और श्रीदुर्वलिका आचार्य तो युगप्रधान सत्यवादी है सो तीर्थंकरों के वचन से विरुद्ध कहै नहीं उनका कहना सत्य है। इतना सुनकर शासन देवी ने आय-कर सर्व के सामने कहा तिस पर भी गोष्टामाहिल ने न माना और कहने लगा कि इस देवी की अल्प शक्ति है इसलिये उस जगह नहीं जासक्ती है। तब श्रीआचार्यजी ने उस को गच्छ के बाहिर किया और समस्त संघ ने उस को सातवां निन्नव जानकर उसका तिरस्कार किया और किसी ने संग न किया। इस रीति से सात निन्नवों का अधिकार कहा तिस में प्रथम, छठा, सातवां इन तीनों ने तो कदाग्रह को नहीं छोड़ा और बाकी के च्यार तो कदाग्रह को छोड़कर मिथ्या दुक्कडं देकर शामिल हो गये। यहां तक जिस ने सूत्र से विरुद्ध किं-चित् भी कहा उसी को निन्नव ठहराय कर समस्त संघ से बाहिर कर दिया और फिर किसी ने भी उस को अंगीकार न किया और उन का पक्ष भी न चला। परन्तु श्रीभगवान महावीर स्वामीजी के ६०६ व.पं पीछे जो कि सहस्रमल्ल शास्त्रों से बहुत विषम वाद करके अलग हुआ

जिसने अपना मत दिगंबर होकर चलाया सो दिगम्बर मत प्रसिद्ध है और शास्त्रों में भी बहुत जगह लिखा है और हमने भी "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" में किंचित् स्वरूप लिखा है सो वहीं से समझ लेना। इसलिये इस का वर्णन यहां नाममात्र किया है ॥

अब इस से आगे की व्यवस्था दिखाते हैं कि दिगम्बर ने तो अपने रागी गृहस्थियों की श्रावगी जाति बनायकर मत चलाया और ऐसा जाल फंसाया कि जाति वा कुल का धर्म होने से कोई भी जाल से बाहर न निकल सके और धर्म की भी सत्य असत्य परीक्षा न कर सके। क्योंकि जो जाति कुल धर्म में न फंसाता तो जो आत्मार्थी थे वे सत्य असत्य की परीक्षा करके असत्य को छोड़ते और सत्य को ग्रहण करते तो उसका मत न चलता। इसलिये सहस्रमल ने दिगम्बर मत रूपी जाल जाति कुल धर्म को दिखायकर न निकलने दिये। फिर वे लोग फंसे हुए अपना जाति धर्म जानकर जैनी नाम धरायकर कदाग्रह और ममत्व रूपी मिथ्यात्व में उन्मत्त होकर जगत से अनेक द्वेष बुद्धि करते हुए देशों में फैल गये परन्तु आत्मा का अर्थ न देखा और जाल में फंसगये। यद्यपि उनके मत में दिगम्बर मुनि कितनेही काल से अब तक उपदेश देनेवाले नहीं हैं तौभी गृहस्थी लोग अपने जाति धर्म में फंसे हुए आत्म धर्म्म के समान चलाने की कोशिश करते हैं और शास्त्रों का सीखना वा सिखाना सभा करना इत्यादिक अनेक उपाय करते हैं। क्योंकि जो लोग हमारे जाति धर्म में फंसे हुए हैं सो कदाचित् उन लोगों को नहीं चेताते रहेंगे तो इस हमारे जाल से निकल जायंगे इसलिये तेरह पन्थी, गुमान पन्थी और बीस पन्थी आदि भेद हैं और भट्टारिखों में भी गद्दी आदिकों के कई फिरके हैं सो यह बात सर्व्व में

प्रसिद्ध है। और जो कोई श्रावगी इन के धर्म से विपरीत होकर जो किञ्चित् भी और धर्म्म की बात करे तो जाति में से निकालदें और उसका विवाह, भोजन, पान आदिक बन्द करदें। अभी कुछ थोड़े से दिन के पहिले नागोर में एक श्रावगी के दो तीन लड़के और दो तीन लड़कियां थीं सो बाप के मरजाने से नागोर के पास एक गांव में अपने ननेरे में रहते थे सो उस गांव में बालपने से रहते हुए जाति का धर्म यथावत मालूम न हुआ। उस जगह कोई महात्मा की सोहबत पायकरके किंचित् राम २ करने लगे और उन लोगों की सोहबत पायकर के किंचित उस धर्म्म को जानने लगे। तब वे लोग एक दिन नागोर में किसी के विवाह में गये थे उस जगह भट्टारखजी मोजूद थे। उन को जाति-गुरु मानकर मिलने वास्ते गये तो उनको श्रावगियों की रीति तो मालूम न थी सो भट्टारखजी को राम २ किया। उस राम २ के सुनतेही भट्टारखजी ने उन पर बहुत क्रोध किया। तब उन लोगों के जीमें कुछ ईर्षा हुआ और कहने लगे कि महाराज राम २ करने से क्या दोष हुआ? यह भी तो एक धर्म्म है। उसी वक्त भट्टारखजी ने कुल श्रावगियों को इकट्ठा किया और कहा कि इन लोगों ने राम २ किया सो इन को जात से बाहिर निकालदो, क्योंकि जो इन को जात से बाहर न निकालोगे तो इनकी देखा देखी और भी इस धर्म्म को छोड़कर अन्य धर्म्म में चले जांयगे तो तुम्हारे बड़ोंने जो धर्म्म अंगीकार किया है सो तुम्हारे बड़ों का धर्म्म क्योंकर रहेगा? इसलिये इन को जात से बाहिर करो। इन को बाहिर करने से फिर कोई भी ऐसा न कर सकेगा। तब उन श्रावगियों ने उस भट्टारख की आज्ञानुसार कार्रवाई की और उन शख्सों को जाति से बाहिर निकाल दिया। तब

जो शख्स निकले थे उन्होंने भी जातवालों की खुशामद न की और दरियादासी रामस्नेही का पन्थ चलाया सो पन्थ मारवाड़ में मोजूद है और नागोर में उनकी निज गद्दी है। इस रीति से इस पंचम काल के लोग जाति कुल धर्म्म के सबब से कदाग्रह ममत्व रूप जाल में फंस रहे हैं और आत्मा के अर्थ की जिनको इच्छा नहीं है। इसलिये बुद्धिमान अनुमान करते हैं कि इन लोगों का दोष नहीं है किन्तु यह हुन्डा सर्पनी काल में पंचम आरे की महिमा है। अब दूसरी वात सुनो।

हम श्वेताम्बर आमना की व्यवस्था कहते हैं परन्तु जो इस ग्रंथ के बांचनेवाले हैं उन लोगों से हमारा यह कहना है कि जो व्यवस्था इस ग्रंथ में लिखी जाती है उस को बुद्धि पूर्वक गौर करके बांचें और वर्त्तमान काल में जो पक्षपात रागद्वेष ममत्व भाव हो रहा है उस को छोड़कर जिनाज्ञा में प्रतीति लावें जिस से भव्य जीवों को आत्मा का अर्थ हो और कदाग्रह मिटे, क्यों कि कदाग्रह में धर्म्म की प्राप्ति कदापि न होगी इसलिये रागद्वेष छोड़नाही मुनासिब है। और मैंने यह ग्रन्थ किसी की निन्दा वा खंडन अथवा द्वेष से नहीं लिखा है किन्तु राग द्वेष मिटाने के वास्ते। क्योंकि जिन धर्म्म श्री वीतराग सर्वज्ञ देव का कहा जाता है फिर इस धर्म्म में इतनी पक्षपात अथवा रागद्वेष क्योंकर फैल गया ? इसलिये कदाग्रह रूपी कार्य्य को देखकर कारण की व्यवस्था अवश्यमेव कहनी पड़ी नतु यती, सम्वेगी, बाईसटोला, तेरह पन्थी गच्छादि ममत्व के वास्ते। अब देखो कि जिन के पीछे सातवां निन्नव निकला है उस सातवें गोष्टामाहिल निन्नव के गुरु श्री-आर्य्यरक्षितसूरिजी महाराज ने दुर्वलिका पुष्प को ९ पूर्व पढ़ाने के बाद १० वां पूर्व पढ़ाया। परन्तु वे पढ़तो जाते फिर उस को भूल जाते इसलिये श्री

आर्य्यरक्षितसूरिजी ने पड़ता काल जानकर और जीवों की मन्द बुद्धि समझकर जो कि शास्त्रों में चार अनुयोग शामिल थे उन की शामिलात को समझना भव्य जीवों के वास्ते कठिन जानकर जुदे २ अनुयोगों की व्याख्या शिष्यों को देने लगे। तब से पृथक् २ अनुयोग हो गये और मैं ने किसी पुस्तक में ऐसा भी देखा है वा सुना भी है कि भाष्य निर्युक्ति उन्हीं आचार्यों ने लिखाई है और मूल सूत्र पीछे से लिखे गय हैं। इस में मेरी कुछ दृढ़ प्रतिज्ञा वा विवाद नहीं है किन्तु जैसा परंपरावाले कहें वैसा ठीक है। अब इन सात निन्हवों तक तो व्यवस्था ठीक रही क्योंकि जिस किसी ने शास्त्र से वा आचार्य स्थिवर साधुओं से एक वचन भी विरुद्ध कहा उसी को निन्हव ठहराय कर जिन धर्म्म से वाहिर किया, और किसी जैनी ने उन को अंगीकार न किया, परन्तु सहस्रमल ने बहुत बातों का शास्त्र से विषमवाद करके बोटक मत अर्थात् दिगंबर मत चलाय राग-द्वेष फैलाया। और उन्हीं वक्तों में श्री पार्श्वनाथ स्वामी के सनतानिया श्रीरत्नप्रभुसूरि ने ओसानगरी में लोगों को प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति स्थापन की, और उन को जिन-धर्म का उपदेश देकर जैनी बनाया सो इन का वृत्तान्त मैंने जैसा सुना है तैसा लिखता हूं॥

विक्रम के सम्वंत् २२२ की साल मेंश्रीरत्नप्रभु सूरिजी विचरतेहुए ओसा नगरी में गये उस जगह जिन धर्म का प्रचार न देखने अथवा आहार पानी का साधुओं को जोग न मिलने से एक शिष्य को अपने पास रखकर बाकी साधुओं को अन्यत्र विहार करादिया और उन से कह दिया कि मैं चौमासा इसी जगह करूंगा क्योंकि सब जने रहें तो इस जगह आहार पानी का जोग मुश्किल है और दो जने की गुजर

तोजैसे बनेगी तैसे हो जायगी इसलिये आहार पानी के अभाव से उन साधुओं को बिहार करा दिया और आप अपने सिज्जाय ध्यान में रहने लगे। कुछ दिन के बाद उस नगर का जो राजा था जिस के एकही पुत्र था उस को रात्री के समय सर्प ने काटखाया तब राजा ने अनेक तरह के उपाय किये पर वह पुत्र सचेत् अर्थात जिन्दा न हुआ तब उस नगर में हाहाकार मचगया। प्रातःकाल को उस पुत्र को मसाणों में लेजाने लगे उस वक्त गुरु ने अपने शिष्य से कहा कि तू जाकर किसी राजवाले से कह दे कि इस लड़के को हमार गुरु के पास लेजाओ तो वे जिन्दा करदेंगे। उस साधू ने जाकर किसी राज के कामवाले से कहा कि जो राजा का पुत्र मरगया है उस को तुम हमारे गुरु के पास लेजाओ तो जिन्दा हो जायगा। और श्रीगुरु महाराजजी फलानी जगह रहते हैं। इतना उस राज के कामदार से कहा तब उस कामदार ने राजा से उसी वक्त जाकर अर्ज की। तब राजा अपने पुत्र को लेकर सब आदमियों के साथ श्रीगुरुमहाराज के पास पहुंचा और श्रीरत्नप्रभु सूरिजी के चरणों में लौटकर कहने लगा कि मेरे यही एक पुत्र है इस के सिवाय दूसरा कोई पुत्र नहीं। मैं ने आप की शरण ली है इस को आप अच्छा करो तो मेरा वन्श रहे नहीं तो मेरा वन्श उच्छेद होजायगा। हे भगवान्! आप सत पुरुष महात्मा हो आप के वचन से मेरा भला होगा। इसलिये आप मेरा उपकार करो। उस वक्त श्रीगुरु महाराजजी बोले कि थोड़ासा जल मंगाओ तब राजा ने उसी वक्त लोटा अमनिया जल का भराकर मंगाया और श्रीगुरु महाराज को देने लगा। तब गुरु महाराज कहने लगे यह तो कच्चा जल है हम तो इस को छूतेभी नहीं, गर्म पानी हो तो काम

चले। तब वहां गर्म जल का मिलना मुश्किल होगया। फिर गुरु महाराज ने कोई और उपाय करके उस राजा के लड़के को सचेत अर्थात् जिलादिया। तब राजा बड़े चमत्कार को प्राप्त हुआ और उस ने अपने पुत्र का बहुत उत्सव किया और गुरु महाराज की भेंट में भी लाखों रुपये का द्रव्य लायकर रक्खा। तब श्रीगुरु महाराज कहने लगे कि भाई हम तो साधू हैं, हम धन रखना तो अलग रहा परन्तु हाथ से भी नहीं छूते। उस वक्त राजा कहने लगा कि हे महाराज! आप ने मेरा वन्श चलाया इस उपकार पर इतनीभी आपकी सेवा न करूं तो और मुझ से क्या बन सकेगा सिवाय देने लेने के? नहीं तो आप कुछ और आज्ञा फरमाइये। जो आप की आज्ञा हो सो मैं करूं। तब गुरु महाराज कहने लगे कि हे राजन! जो तेरी ऐसीही इच्छा है तो तू श्री वीतराग सर्वज्ञ देव का धर्म अंगीकार कर जिस से तेरा दोनों भव का कल्याण हो। इस हमारी आज्ञा को अंगीकार कर। राजा कहने लगा कि हे महाराज! वह धर्म कैसा है उस का आप हम को उपदेश दीजिये तो हम अंगीकार करें। उस वक्त श्रीगुरु महाराज ने वीतराग के धर्म का स्वरूप बताया तब राजा को आदि लेकरके सब लोग उस धर्म को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और राजा हाथ जोड़कर अर्ज करने लगा कि हे महाराज! आप ने जो धर्म्म का उपदेश दिया सो तो जीव दया रूपी बहुत उत्तम और निर्मल है परन्तु मैं अभागा इस नगर का राजा हूं सो मुझ से यह दयारूपी धर्म्म पलना कठिन है क्योंकि इस नगर की जो देवी है सो साल की साल मनुष्य का बलि लेती है और भैंसा बकरों की तो गिन्तीही नहीं। इसलिये हे प्रभु! मेरे से यह दया रूपी धर्म्म क्योंकर

पले ? अलबत्ता जो यह देवी इस बलिदान को न लेय तो मैं आप के धर्म्म को अंगीकार करूं। तब श्रीगुरु महाराज कहने लगे कि हे राजन् ! तू धर्म्म अंगीकार कर इस का बंदोबस्त हम करदेंगे जब तेरे बलिदान के दो चार दिन बाकी रहें तब तू हम को औसर जना देना। इतना सुनकर राजा ने और राजा के कामवाले और वहां के सेठ साहूकार अर्थात् कुल बस्तीभर ने जिन-धर्म्म अंगीकार किया। इस के पीछे जब वह बलिदान का वक्त आया तब राजा ने गुरु महाराज को औसर जताया कि आज से ८वें दिन बलिदान होगा अब आप उपाय बतावें सो करें। उस वक्त गुरु महाराज ने रात्री के समय उस देवी को आकर्षण करके बुलाया और उस देवी को उपदेश दिया तब देवी कहने लगी कि मेरी पूजन होनी चाहिये। तब गुरु महाराज कहने लगे तेरी पूजन कोई बन्द नहीं करता तेरे बलबाकल भेंट दिये जांयगे। इतना सुन देवी नमस्कार कर अपने स्थान को चलीगई। और सवेरे के वक्त राजा को आदि लेकर सर्व को कहदिया कि शीरा, लापसी, पूरी, पापड़ी, खाजा, मेवा, मिठाई इत्यादिक अनेक चीजें चढ़ाओ परन्तु बलिदान मत दो, तुम को कोई उपद्रव नहीं होगा। तब राजा को आदि लेकर सर्व लोगों ने उसी रीति से पूजन किया परन्तु देवी ने उस पूजन को अंगीकार न किया और कुपित होने लगी, और कहने लगी कि मेरा बलिदान लाओ। तब गुरु महाराज ने फिर उस को आकर्षण करके समझाया और कहा कि जो तुम देवता होकरके ही वचन से उलटते हो तो मनुष्य क्योंकर सत्य पर रहेगा ? तब देवी कहने लगी कि मेरा बलिदान मुझे मिलना चाहिये। तब गुरु महाराज कहने लगे कि लापसी, शीरा, पूड़ी, पापड़ी, खाजा इस

के सिवाय तो और कुछ बलिदान नहीं होता। हमारे यहां तो यही बलिदान है। तब देवी कहने लगी कि मैं तुम्हारे वचन में आई हुई लाचार हूं परन्तु जो तीन दिन के भीतर इस बस्ती से बाहिर निकल जायगा सो तो सर्व तरह फले फूलेगा और खुशी रहेगा नहीं तो जो मेरे कहने के उपरान्त रहेगा उस को सिवाय दुःख के और मरने के कुछ नहीं होगा। इस वचन को सुनकर सब लोग वहां से निकलकर जिधर जिस की इच्छा आई उधरही जा बसे। इस कहने से ऐसा अनुमान सिद्ध होता है कि वह नगरी की नगरी ओसवाल जाति को प्राप्त हुई और कोई की ज़बानी ऐसा भी सुना है कि राजा का कामदार था उसी के पुत्र को जिलाया था सो वह कामदार और उस के सगा सम्बन्धियों ने जिन-धर्म्म को अंगीकार किया। इसलिये ओसवालों में 'तातेड़' जाति के प्रथम हुए हैं सो ऐसा भी सुनने में आया है। और जो भेट के रुपये गुरु महाराज के सामने रक्खे थे उसी द्रव्य से मन्दिर उस जगह बना और उस मन्दिर में श्रीमहावीर स्वामी शासनपतिजी की मूर्त्ति, श्रीरत्नप्रभुसूरिजी के हाथ की प्रतिष्ठा की हुई मोजूद है। और ऊपर लिखी वार्तें मैंने सुनी हुई लिखी हैं इस लिखने में मेरा किसी से वाद विवाद नहीं है किंतु यहां मेरा यह वार्ता लिखाने का प्रयोजन यही है कि पेश्तर जिनमत में जिस को धर्म की रुचि थी सोही धर्म्म अंगीकार करता, परन्तु यहां से श्रीरत्नप्रभुसूरिजी ओसवाल जाति स्थापन कर जिन धर्म का उपदेश देकर शुद्ध मार्ग में लाये। परन्तु इस जगह से दृष्टिराग और जाति-धर्म के होने से किंचित् पक्षपात का बीज शुरू हुआ और शिथिलाचार की भी किंचित् नीम लगी है लेकिन इस नगर के बनने व बसने में अभी कुछ बिलम्ब

होगा क्योंकि श्रीमहाबीर स्वामी का वचन है कि मेरे निर्वाण के पीछे एक हज़ार वर्ष तक अखंड शासन चलेगा फिर आहिस्ते २ इस हुन्डा सर्पनी दूषण काल के प्रभाव से दुःख-गर्भित, मोह-गर्भित वैराग्यवाले धर्म को चलनी के समान कर डालेंगे और कुमति, कदाग्रह, रागद्वेष, पक्षपात से धर्म की प्राप्ति भव्य जीवों को प्रायः करके मुश्किल होजायगी। इसलिये इस ममत्व रूपी नगर का बनना व बसना आहिस्ते २ प्रबल होता चला जायगा सो मैं भी किंचित हाल लिखता हूं सो बुद्धि से बिचार करके बांचेगा व सुनेगा तो हाल सब खुल जायगा। इस वास्ते आगे का हाल कहता हूं कि "श्रेयांसि बहु विघ्नानि भवंति महतामपि" अर्थात् अच्छे काम में अनेक तरह के विघ्न होते हैं सो देखो कि एकतो बहुत द्वेष का बढ़ानेवाला अनेक बातों को जैनमत से विरुद्ध कहता हुआ दिगम्बर मत निकल कर अनेक तरह के प्रपंच करके शुद्ध मार्ग को आपत्ति देता हुआ; और दूसरा बीच २ में कई दफा बारह बरसिया काल भी पड़ा उस से भी साधू मुनिराजों को आहारादिक की अनेक तरह की आपत्ति पड़ी; तीसरा काल के दूषण से बुद्धि हीन अर्थात् मन्द होने लगी कि जिस से शास्त्र का पूरा पठन पाठन न होसके। परन्तु तिसपर भी कितनेही काल तक मुखस्थ (मुखाग्र) ही विद्या का पठन पाठन चला आया। फिर जब आचार्य ने देखा कि अब न चलेगा तब भगवान श्री महाबीर स्वामी के निर्वाण से ६८० वर्ष पीछे श्री देवर्द्धि गणि क्षमाश्रवण आचार्य ने सर्व साधुओं को इकट्ठे करके शास्त्र का लिखना शुरू किया और स्थिवरों को जैसे २ अलावे याद थे वैसे के वैसे अलावे पुस्तकों में आरूढ़ किये परन्तु ऐसाभी श्रवण करने में आता है

कि पेश्तर भी किसी आचार्य ने पुस्तकों में स्थिवरों की ज़बानी से शास्त्र लिखाये थे परन्तु उन दोनों को आपस में मिलाकर शुद्ध न कर सके इसलिये कितनेही शास्त्रों में आपस में विषमवाद है। परन्तु हमारे तो यहां इतनाही प्रयोजन है कि भगवान श्रीमहावीर स्वामी के ६८० वर्ष पीछे पुस्तकों में शास्त्र लिखे गये पेश्तर कंठाग्र थे, सो गुरु आदिक जैसा शिष्य को पढ़ाते वैसाही अर्थ वह याद रखता और उसी पर आरूढ़ होकर चलता। कदाचित् कोई अपनी बुद्धि के अनुसार अर्थ में फेरफार करता तो उस का फेरफार न चलता क्यों कि जो बड़े २ स्थिवर साधु थे उनही के वाक्यों को सत्य मानतेथे और उनही लोगों का प्रमाण देते थे इसलिये जो गुरु ने अर्थ बताया था सिवाय उसके दूसरा अर्थ न चला क्योंकि उस जगह कोई पुस्तक के लेख का प्रमाण नहीं था केवल आचार्य व स्थिवर गीतार्थियों के वचनही का प्रमाण दिया जाता था। सो इन आचार्य महत् पुरुषों ने उपकार बुद्धि से कागज़ व ताड़पत्रों पर सूत्र, भाष्य, टीका, निर्युक्ति, चूरणी आदिक लिखे क्योंकि जो मन्दबुद्धि हैं उनको मुखस्थ याद न होगा तो इस पुस्तक से याद करके अपनी आत्मा का अर्थ करेंगे। इसलिये भव्य जीवों को पुस्तक का अवलम्बन दिया। परन्तु एक तो यह पुस्तक का अवलम्बन दूसरा सूत्रों का आपस में मिलाप न होने से जो बीच में कई सूत्रों में विषमवाद रहा सो ये दोनों कारण उस ममत्व रूपी नगर के बसानेवाले दुःख और मोह गर्भित वैराग्यवालों के वास्ते सहायकारी हुए॥

अब इस जगह कोई ऐसी शंका करता है कि जो तुम्हारे जैन-मत के सर्वज्ञ हुए थे उन्हों ने खगोल भूगोल व ज्योतिष आदि उस सर्वज्ञता में देखे नहीं या उन को आधी सर्वज्ञता हुई? अथवा उन्हों

होगये थे क्योंकि इन के ग्रंथों में पासत्थे आदिकों का बहुत निषेध किया है और शुद्ध मार्ग को पुष्ट किया है क्योंकि ऐसा न्याय है कि "विधि होगी तो निषेध होगा, विधि नहीं तो निषेध किस का ?" और ऐसा भी अनुमान से सिद्ध होता है कि उन पासत्थे आदि शिथिलाचारियों ने लिखी हुई पुस्तकों में गाथा आदिभी विशेष मतलब को जानकर प्रवेश की कि जिस से अपना मतलब सिद्ध हो। क्योंकि जहां आचार्यों ने सूत्र की व्याख्या की है तिस जगह युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध किया है कदाचित् कहीं अपनी युक्ति नहीं चली तो इतना कहके छोड़दिया कि "ज्ञानीगम्य" अर्थात् ज्ञानी जाने ऐसा कहके छोड़दिया परन्तु अपनी बुद्धि से कुछ न मिलाया और जिस जगह उन को गाथा का प्रक्षेप मालूम हुआ उस जगह उन्हों ने गाथा का अर्थ तो किया पग्न्तु उस शिथिलाचार की गाथा को अपनी युक्ति से पुष्ट न किया, और केवली को भी न भुलाया। जो कोई ऐसा कहे कि तुमने ऐसा अनुमान क्योंकर किया और ऐसी व्याख्या किस जगह देखी जो तुम ऐसा लिखते हो ?॥

तो हम कहते हैं कि हे भोले भाई! वर्त्तमान काल में तो लोगों ने अलावे के अलावे सूत्रों के उठा दिये, सो तो जब हम वर्त्तमान काल का हाल लिखेंगे अथवा जिस जगह ज़ियादा कुमति कदाग्रह रूप घूघू उत्पन्न हुए हैं उस जगह लिखेंगे। परन्तु किंचित् अनुमान हम अपना दिखाते हैं कि श्रीहरिभद्र सूरिजी की की हुई टीका जो श्रीदशवैकालक की निर्युक्ति के ऊपर है उस में श्रीआचार्य महाराज ने जो कि द्रव्य रखने की गाथा साधु के वास्ते उस निर्युक्ति में कही है उस गाथा का अर्थ श्रीहरिभद्र सूरिजी महाराज ने किया है सो उस

अर्थ में ऐसा है कि साधू कार्य के वास्ते सोना लावे और अपने पास रक्खे और कार्य हुए के बाद परटदे ऐसा कहकर न तो कुछ अपनी युक्ति दिखाई और न केवली को भुलाया परन्तु इतना तो उस जगह लिखा है कि "मध्यस्थैःपुरुषैःस्वधीयाविचारणीया" इतना लिखकर फिर आगे के सूत्रों की व्याख्या करने लगे। इस ऊपर लिखे मध्यस्थ वाक्य के देखने से मालूम होता है कि जो यह गाथा क्षेपक न होती तो वे अपनी युक्ति देकर अच्छी तरह से पुष्ट करते अथवा केवली को भुलाते अर्थात् ज्ञानी को भुलाते सो इन दोनों बातों में से एकभी न की। इसलिये हमारा अनुभव सिद्ध हुआ, और इस का विस्तार आगे लिखेंगे। सो इस ममत्वरूपी नगर में मकान आदि तो बनने लगे परन्तु रहने वाले अभी तैयार न हुए। और इस अर्से में कई आचार्यों ने क्षत्री आदिकों को प्रतिबोध कर ओसवालभी बनाया होगा सो श्री उद्योतन सूरिजी तक तो इसी रीति से बराबर शासन चलता रहा परन्तु श्रीउद्योतन सूरिजी महाराज के पाटधारी तो श्री वर्द्धमान सूरिजी हुए लेकिन श्रीउद्योतन सूरिजी के पढ़ाये हुए ८३ साधू थे सो घड़ी पल देखकर उन ८३ साधुओं को वासक्षेप देकर आचार्य पद दिया सो इस जगह ८४ गच्छ की स्थापना हुई। इन ८४ गच्छों की स्थापना होने सेही उस ममत्व रूपी नगर बसने का अंकुर उत्पन्न हुआ परन्तु हाल का हाल ममत्व रूपी नगर न बसा और ८४ गच्छ वालों में परस्पर ममत्वभाव प्रीति बढ़ती रही और रागद्वेष न उठा और सर्व जने मिलकर जिनधर्म की उन्नति करने लगे अर्थात् हजारों लाखों आदमियों को प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति में मिलाते गये। सो जो वर्त्तमान काल में गच्छ आदि मोजूद हैं उनकी पाटावली में लिखा है कि हमारे

जाते तो उस वक्त में अपने ओघा से जमीन को पूजते ( जीव जन्तु को अलग करते ) हुए आहिस्ते २ जायकर मात्रा को परटकर फिर लौटकर आसन को पूजकर फिर बैठजाते थे। सो ६ घड़ी रात तक तो उन्हों ने सिज्जाय ध्यान किया फिर उघाड़ पोरसी करके आधी रात तक ध्यान किया। आधी रात के बाद आसन बिछाकर सोने की इच्छा से उस आसन पर लेटगये सो भी इस रीति से कि पग और हाथ सब सिकोरे हुए सब डांवी करवट सो गये। कदाचित् किसी साधु को करवट लेनी होती तो ओघा अर्थात् रजोहरण से जिस अंग की तरफ सोना होता उस अंग की तरफ उस को पूजता फिर आसन को पूजकर ( पोंछकर ) ( झाड़कर ) अपना पसवाड़ा फेरता। इस रीति से पहरभर की नींद लेकर पहरभर रात से सोते से उठे और अपना धर्म्म कृत्य करने लगे। इसी रीति से उन को दिन उगगया और प्रतिक्रमण करने के बाद अपने वस्त्रों की विधि पूर्वक पड़लेण करने लगे। ऐसा उनका हाल देखकर वे सिपाही लोग आपस में कहने लगे कि हे भाइयो ! ऐसे चोर तो हमने आज तक देखे नहीं परन्तु न मालूम किस दुष्ट ने उस राजा के कान भरदिये ! ऐसे करुणानिधि, जीव की दया पालनेवाले कि जो विना ज़मीन को पूजे उस पर पांव भी न धरें ऐसे महात्माओं को चोरी का कलंक लगाना बहुत बुरा है परन्तु हम को क्या, हम तो राज के नौकर हैं, जैसा राजा ने हुक्म दिया तैसा किया। अब जैसा हमने इन का चाल चलन देखा है वैसा राजा से अर्ज करदेंगे। तब वे सिपाही लोग वहां से चले और राजा के पास पहुंचे और जो रात्रीभर का वृत्तान्त देखा सो सब राजा से बयान किया। तब राजा ने सुनकर जिस के

मकान में ठहरे थे उस को बुलाया और उस से कहा कि तुम ने अपने मकान पर चोर ठहराये हैं। तब वह कहने लगा कि हे राजन् ! मेरे यहां तो चोर नहीं हैं किन्तु साहूकार हैं। इतना सुन-कर राजा चुप हुआ और उस को तो विदा किया और जिन्हों ने चोर बतलाये थे उन को बुलाकर कहा कि तुम तो चोर बतलाते थे परन्तु वे तो चोर नहीं हैं। तब वे पासत्थे आदिक कहने लगे कि हे राजन् ! वे धर्म्म के चोर हैं नतु गृहस्थ के धनादिक के चोर । इधर से जिस के मकान पर ठहरे थे वह राजा के यहां से जाकर गुरु महाराज को कहने लगा कि महाराज साहब ! राजा ने मुझे ऐसा कहा। तब गुरु महाराज कहने लगे कि हे देवानुप्रिय ! तू राजा से जाकर कह कि जिन शख्सों ने उन को चोर बतलाया है वे चोर हैं। इसलिये हे राजन् ! आप को चोर और साहूकार की निश्चय करनी चाहिये। क्योंकि जो आप राजा हो निश्चय न करोगे तो दूसरा कौन करेगा ? इस वास्ते आप इस काम को जरूर करो। क्योंकि जिस से पूरी २ खबर पड़जाय। इस बात को सुनकर राजा ने उन पासत्था आदिकों को बुलाया और उन से कहा कि तुम उन को धर्म्म का चोर बतलाते हो इस का क्या प्रमाण देते हो ? तब वे चैत्यवासी पासत्थादिक कहने लगे कि सूत्रों के प्रमाण से वे चोर हैं । इतना वचन सुनकर राजा उस श्रावक से कहने लगा कि वे जब चोर नहीं हैं तो उन को इस सभा में लाओ। तब वह जाकर गुरु महाराज को उसी वक्त राजा की सभा में लेकर आया। उस वक्त गुरु महाराज को देखते ही राजा उठकर खड़ा हुआ और उन का सनमान कर बिठाया। तब उन दोनों के शास्त्रार्थ में दशवैकालक सूत्र का प्रमाण

किन्तु इन सत्पुरुषों के तो जिनधर्म्म की उन्नति और भव्य जीवों का कल्याण करने के वास्ते जाति बनाकर उपदेश देना था नतु ममत्व भाव से। परन्तु दूषण काल के प्रभाव से ममत्व रूप कारण की उत्पत्ति होना और सर्वज्ञों के वचन का मिलना था इसलिये यह जाति धर्म्म ममत्वरूप बसने का कारण होगया। सो यह ममत्वरूपी नगर तो बसने लगा परन्तु इस नगर में चोर, उठाईगीरा, गठकटा, ठग और फांसीगरा ये लोग बसे नहीं थे। सो १२१३ के सम्वत् से लेकर आहिस्ते २ ऊपर लिखे मुजिब सब कोई बसते गये सोही दिखाते हैं। पेश्तर आंचलिया गच्छवाले ने भिन्न समाचारी करके लोगों को जाल में फंसायकर अपना बाड़ा जुदाही बांध लिया। जिस के बाद साढ़पूनमिया और जिस के बाद आगमिया, जिस के बाद कडुवामति, फिर पायचन्द आदि इन्होंने भिन्न २ समाचारी करके अपने २ गच्छ बांधकर जुदी २ प्रवृति चलाई और अपनी २ वाड़ाबन्दी करके जो ओसवाल जाति के थे उन को अपने राग में पुष्ट करके आपस में लड़ाना शुरू करदिया और काल पड़ने से खरतर, तपा, बड़गच्छ चैत्रपाल गच्छादि में भी आपस में ममत्वभाव और ईर्षा होने लगी इन और गच्छों में से जाति के ममत्व भाव अर्थात् ओसवालों की आपस में काट फांटकर जुदी २ गद्दी होने लगी। सो अब तक वर्त्तमान काल में खरतर तपा में पन्द्रह २ बैसना अर्थात् गद्दी होगई और श्रावकों को ममत्वभाव में बांधकर राग-द्वेष पक्षपात से द्वेष बढ़ने के सिवाय समताभाव न रहा। केवल रागद्वेष से लड़ाई दंगा बढ़ने लगा। इत्यादि कारणों से आत्मधर्म्म की व्यवस्था तो कम होती गई और जिनाज्ञा से विरुद्ध व्यवस्था बढ़ती गई। इस जगह एक दृष्टान्त लि-

खकर दिखाते हैं उस से बुद्धिमान समझ लेंगे और मेरे लिखे हुए का विचार आत्मार्थियों के यथावत् बैठ जायगा नतु हठग्राही, कदाग्रही, संसारी, निविड़ मिथ्याती के । देखो जब दो शख्स ईर्षा, मान, बड़ाई तृष्णा के जोर से आपस में गालीगिलोच, मारपीट करने लगते हैं उस वक्त में एक ने किसी के थप्पड़ मारा तो वह थप्पड़ खानेवाला अपने प्रतिपक्षी के घोंसा मारने को दौड़ता है । घोंसा खानेवाला अपने प्रतिपक्षी के लात मारने को दौड़ता है और लात खानेवाला अपने प्रतिपक्षी के जूती मारने को दोड़ता है इसीरीति से लाठी, दण्डा, पाषाणादिको जानलेना । और जब दस बीस आपस में लड़ते हैं तब उस जगहभी अपने २ प्रतिपक्षी को मारने के सिवाय और कुछ उपाय नहीं सूझता है । सो देखो उन लड़नेवाले शख्सों को पगिया, दुपट्टा, कड़ा, कंठी, रुपया, पैसा इत्यादिक चीजों का खयाल नहीं कि उन चीजों को कोई शख्स उठाकर ले जावेगा । परन्तु चीज़ जाने का तो कुछ सोच है नहीं, केवल इतनाही सोच है कि इसने मेरे मारी है मैं इस के मारूं जवही मेरी बात रहे । ऐसा खयाल करके मारपीट में लगा हुआ अपनी अनेक वस्तुओं को गमाता है । इसी रीति से इस जैनमत में साधू लोगों ने गच्छ ममत्वरूप भिन्न २ समाचारी करके गृहस्थियों को दृष्टिराग में फंसायकर, मान, बड़ाई, ईर्षारूप तृष्णा में लगे हुए कदाग्रह रूप स्थाप उत्थाप, पक्षपात, लड़ाई करते हुए जिनाज्ञा, विनय, यत्न, क्षमा, सन्तोष इत्यादिक वस्तुओं को गमाते हुए, केवल अपनी पक्ष की वृद्धि के वास्ते जिनाज्ञा आदिक वस्तुओं का कुछ भी खयाल न किया । इस दृष्टान्त से आत्मार्थी भव्य जीवों को विचारना चाहिये कि कदाग्रह रूपी झगड़े में वीतराग-आज्ञा रूप धर्म्म चिन्ता-

मणि रत्न क्योंकर पास रह सकेगा ? अब देखो इस कदाग्रह होने का कारण यही है कि पड़ता काल होने से आचार्यों ने, ज्ञाति कुल जिन धर्म्म के विषय स्थापी । उस ज्ञाति (जाति) के स्थापने से दुःखगर्भित, मोहगर्भित वैराग्यवालों के वास्ते यजमान पुरोहिताई के बतौर होगया । इसलिये जिन धर्म्म अकसर ओसवाल पोड़वालों में कुल धर्म्म होजाने से मान, बड़ाई, ईर्षा, परिग्रहधारी, इन्द्रियों के विषय भोगने वाले, जिनाज्ञा विराधकों ने गृहस्थियों के गले में दृष्टिराग, ममत्वरूप पीतल की हांडी डालदी कि सिवाय सिर पटकने और क्लेश करने और कर्मबन्ध हेतु के गले से हांडी निकलना मुश्किल होगया केवल कदाग्रहही बढ़गया । क्योंकि जो वे लोग ऐसा न करते तो उन का ऊपर लिखे मूजिब व्यवहार न चलता । इस जगह, दो दृष्टांत हैं । प्रथम तो जैसे किसी बस्ती में कुल नगर की गाड़र इकट्ठी होकर नगर से बाहर चरने को जाती हैं सो उन गाड़रों का स्वरूप तो सब का एकसाही होता है इसलिये जोकि गाडरों के मालिक थे उन्हों ने अपनी गाडरों की पहचान के वास्ते अपनी २ गाडरों के थोक में अपनी इच्छा के मूजिब चिन्ह बनाये कि जिस से अपनी गाडर दूसरों की गाडर में मिल न जाय । सो वे चिन्ह इस रीति के किये—किसी ने तो लाल रंग सिन्दूर का, किसी ने केसर का, किसी ने काला, किसी ने पीला, किसी ने श्वेत; इस रीति से चिन्ह करके निधड़क होगये । जैसे उन गाड़रवालों ने गाडरों पर चिन्ह किये इसी रीति से जो कि ओसवाल पोड़वाल कुल के जैनी हैं सो सब इकसार जाति में थे, इसलिये मान, बड़ाई, ईर्षा, इन्द्रियों के विषय भोगनेवालों ने अपनी अपनी इच्छानुसार समाचारी बांधकर अपनी २ पहिचान के

वास्ते बतौर जिजमान पुरोहिताई के अपने जुदे२ श्रावक छांट लिये। यह प्रथम दृष्टान्त हुआ। अब दूसरा दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे कोई शख्स था उस के यहां थोड़ासा दूध होता था सो उसे हांड़ी में गरम किया करता था और उस हांडी का मुंह छोटा था। परन्तु उस दूध के लालच से बिल्ली आयकर उस में मुंह गेरती तब उस का मुख उस हांड़ी में चला जाता और दूध को पीजाती। फिर दूध पीकर वह सिर निकालती तो उस का सिर न निकलता तब वह बिल्ली ज़मीन या पत्थर पर सिर मारती तो वह मिट्टी की हांड़ी फूट जाती और वह बिल्ली मस्त होकर खुलासा फिरती और दूध के मजे से रोज़ीना यही किया करती थी। तब वह शख्स बिल्ली का उपाय रखता परन्तु न चलता। वह शख्स बिल्ली के फंसाने में न था परन्तु उस शख्स के भाई बेटों ने देखा कि यह बिल्ली नुकसान कर जाती अर्थात् हांड़ी भी फोड़ जाती है और दूध भी पी जाती है और दिल चाहे जहां भगकर चली जाती है इसलिये इसका कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिस से हांड़ी न फोड़े और हमारा दूध भी न पीवे ऐसा समझकर उन्हों ने एक पीतल की हांड़ी उस मिट्टी की हांड़ी के मुंह और आकार के माफिक बनाई और उस में दूध गरम किया और वह बिल्ली हिली हुई उस हांड़ी में भी मुंह गेरकर दूध पीगई। फिर वह अपने गले से हांड़ी निकालने के वास्ते ज़मीन पर सिर पटकने लगी परन्तु वह हांड़ी न फूटी। बहुतसा उस ने सिर पटका उलटी सिर में चोटें खाई और गले में से वह पीतल की हांड़ी न निकली जन्म भर उस हांड़ी को गले में डाले पश्चात्ताप करती २ भूख प्यास से मरण को प्राप्त हुई। प्रयोजन यह है कि जिन महात्माओं ने उपकार बुद्धि से ओसवाल वा पोडवार जाति बनायकर शुद्ध जिनमार्ग

का उपदेश दिया था उन को तो लोभ वा ममत्वभाव किसी तरह का नहीं था परन्तु पीछे जो उन के शिष्य कि जिन को मान बड़ाई ईर्षा परिग्रह आदि संग्रह करने वा इन्द्रियों के विषय भोगने की इच्छा थी उन्हों ने दृष्टि राग बांधकर गच्छ ममत्वरूप हांड़ी गले में गेरदी। वह गच्छ ममत्वरूप हांड़ी गले में से निकलनी मुश्किल होगई और उस हांड़ी में फंसजाने से पक्षपात कदाग्रह अथवा रागद्वेष बढ़कर उस आत्मा के कल्याण की सूरत न रही॥

**शंका—** भला जो तुम ने यह व्यवस्था लिखी है सो क्या भगवान महावीर स्वामी के हज़ार या ग्यारह सौ वर्ष के बाद सबही इस रीति से रागद्वेष और कदाग्रह करने लगे? क्या कोईभी आत्मार्थी उन में जिनाज्ञा का आराधक न रहा? तो फिर भगवान श्रीमहावीर स्वामी का शासन २१००० वर्ष तक अर्थात् पंचमें आरे के छेड़े तक चतुर्विध संघ रहेगा यह वाक्य क्योंकर मिलेगा?॥

**समाधान—** भो देवानुप्रिय! हमारा सर्व के वास्ते यह एकान्त कहना नहीं है। हमने तो जो व्यवस्था भगवान महावीर स्वामी के हज़ार ग्यारह सौ वर्ष पीछे होती आई है सो लिखी है परन्तु इस व्यवस्था के बीच में अनेक आचार्य, उपाध्याय, साधू, आत्मार्थी, रागद्वेष के कम करनेवाले, परिग्रह रहित, इन्द्रियों के विषय से बिमुख, जिनाज्ञापालक, शुद्ध उपदेश के देनेवाले, अनेक महात्मा होगये हैं और जिन्हों की एक दो पीढ़ी पेश्तर शिथिलाचारी वा किञ्चित् परिग्रहधारी होगये थे तो फिर वे महात्मा अपनी आत्मा का अर्थ जानकर अपने गुरु वा दादागुरु के शिथिलाचार और परिग्रह आदि को छोड़कर क्रिया उद्धार कर शुद्ध मार्ग में विचरने लगे और धर्म्म को दिपाया। और कई जगह

राजा वा बादशाह आदिकों को अपने तप आदिक क्रिया का चमत्कार दिखाय कर जगह २ हिंसा को बन्द कराया, और दया से पशु पंछी आदिकों के जीवों को बचाया, और अच्छी तरह से भव्य जीवों को शुद्ध मार्ग बताया। और उनके रचे हुए ग्रंथभी कहीं२ अभी मिलते हैं उन ग्रंथों को देखकर अभी भी भव्य जीव अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं और आगे भी करेंगे। इसलिये सर्व जिन-मार्ग के साधू एकसे होगये सो नहीं किन्तु पासत्थे कदाग्रही बढ़गये। विक्रम के अनुमान सम्वत् ८०० वा १००० के पीछे महात्मा लोग आत्मार्थी थोड़े हुए इसी से यथावत् मार्ग आत्मार्थियों को मिलता है और आगे भी मिलेगा। १५०० वा १५५० के सम्वत् तक तो यह व्यवस्था रही थी परन्तु इससे भी बढ़कर इस जैन धर्म्म में प्रबल उपद्रव करनेवाला भोले जीवों को बहकायकर और जैनी नाम धरायकर दुर्गति को जानेवाला लोंका नाम करके लैया अर्थात् लेखक पुस्तकों के लिखनेवाला किसी जती से लड़कर द्वेष-बुद्धि से जिस में जिन-पूजा का अधिकार होय उस अधिकार को लोप करके पुस्तकों की जुदी प्रति बनाता हुआ। सो जब उन पुस्तकों के बनाने की खबर जती लोगों को पड़ी तो उन्हों ने उस को मारपीट कर वहां से निकाल दिया और पुस्तकों का लिखाना बन्द कर दिया। तब तो वह लोंका प्रबल द्वेष से मन्दिरों से द्वेष करने लगा और कहने लगा कि मन्दिर बनाने वा पूजने में हिंसा होती है। भगवान ने तो दया में धर्म्म कहा है। ऐसी परूपना लोगों के सामने करने लगा परन्तु उस के वचन को सुनकर कोई उसके वचन पर आस्था नहीं रखता था। एक दिन कोई संघ सिद्धाचलजी की यात्रा करने को जाता था सो

चौमासे में मेहपानी प्रबल होने से उस जगह ठहरा था सो उस सङ्घ में से कई एक भोले लोग उसके जाल में फंसकर दो तथा चार आदमी सिर मुंडाय कर भेष लेकर जिन-मूर्त्ति की निन्दा अर्थात् जिन-मन्दिर की पूजा न करने का उपदेश देते हुए कि मन्दिर वा पूजन करने में हिंसा होती है और हिंसा में धर्म्म नहीं है। इसरीति से अपने पन्थ को बढ़ाते हुए वाह्य क्रिया को दिखाने से जो भोले जीव विवेक करके रहित थे वे वाह्य क्रिया को देख कर उन के जाल में फंस गये और मन्दिर वा मन्दिर की पूजन छोड़ बैठे। सो लोंके के उपदेशकभी १०० तथा १२५ वर्ष तक वाह्य क्रिया कपट छल से लोगों को फंसाते हुए होले २ परिग्रह आदिक धारण करने लगे। तब तो इन लोगों के भी आपस में फूट पड़ी और गुजराती, पंजाबी, नागोरी इत्यादिक भेद होने लगे। कोई तो जिन-मन्दिर की विशेष निन्दा करने लगा, कोई थोड़ी और कोई नहीं। जब इन में भी परिग्रहधारी होगये तब इन में से एक दोजनों ने झगड़ा किया और कहा कि तुम साधू नहीं हो इसलिये हम तुम को गुरु नहीं मानें और तुम हमारे गुरु नहीं। हम भगवत का मार्ग चलावेंगे। ऐसा कहकर उन से जुदे होगये और मुंह पर अष्ट पहर मुंहपत्ती बांधे रहना और गज सवा गज का लम्बा ओघा इत्यादि जिनधर्म्म से विपरीत चिन्ह करके कपटाई से वाह्यक्रिया निर्लोभिता दिखायकर भोले जीवों को अपने जाल में फंसाते हुए और देश २ में फिरकर दया २ धर्म्म २ करके मन्दिर वा जिन मन्दिरों की पूजन को मना करते हुए। केवल गृहस्थियों को मुंहपत्ती बंधायकर अपने पास इकट्ठे करने लगे और जिन मंदिरों में लोगों का जाना बिलकुल बन्द करादिया अर्थात् कितनीही जगह जिनमन्दिरों के किवा-

स्वामी संन्यासियों की सेवा टहल में लग भी जाते हैं, वास्ते लोभादि चमत्कार के। और जो जिनधर्म्म में यती, समेगी, बाईस टोला, तेरह पन्थी हैं उन के जाल में जो दृष्टिराग में फंसे हुए हैं वे श्रावक प्रायःकरके अपने रागी के सिवाय दूसरे प्रतिपक्षी को आहार पानी नहीं देते। कदाचित् देते भी हैं तो उस का अपमान अथवा अपने देने में अभाव जनाते हैं। बल्कि मेरे श्रवण करने में ऐसा भी आया है कि गृहस्थी लोग रोटी दिये के बाद अपना प्रतिपक्षी जानकर उस से पीछी रोटी छीन लेते हैं और जती लोगों से तो गृहस्थी हर एक जगह हर एक शहर में कह देते हैं कि आप अपने गच्छ के श्रावक के पास जाओ। हम तो आप के गच्छ के नहीं हैं इसलिये नहीं देते इत्यादिक व्यवस्था होगई है। परन्तु जो २ हाल समेगी साधू साध्वी अथवा क्रिया उद्धार करके श्वेत कपड़ोंवालों से, अथवा बाईस टोले के साधुओं से मैं ने सुना है और सुनता हूं और कई जगह मैं ने भी किसी २ बस्ती में किसी २ गृहस्थी के ऐसी पक्षपात देखी और उन के बचन सुनकर मालूम हुआ कि जिन धर्म्म इन्ही से चलता है। कदाचित् इन का घर न होता तो जिन धर्म्म न चलता। इत्यादि बातें उन पक्षपातियों की देखी और सुनी सो यथावत् लिखने में आवे तो एक ग्रन्थ बनजाय परन्तु मैं ने तो एक इशारे के मानिन्द दिखा दिया है सो बुद्धिमान समझ लेंगे और इन बातों के लिखने में मुझे खेद भी उत्पन्न होता है क्योंकि अति उत्तम अद्वितीय श्री बीतराग सर्वज्ञ के धर्म्म में इतना रागद्वेष कहां से प्रवेश होगया! लेकिन गृहस्थीपने में जो मैं ओसवालों की ढूंढिया साधूओं की जबानी सुनता था कि ओसवाल जाति वगैरःके लोग जिन-धर्म्म में बहुत दृढ

हैं और उन लोगों का हुक्म हासल राज तेज धनादिक की भी वृद्धि है अर्थात् वे लक्ष्मीवान हैं और देव गुरु की बड़ी विनय भक्ति के करनेवाले हैं जब इन को धर्म्म की प्राप्ति अच्छी तरह से होती है और यह सब वैभव धर्म्म के ही प्रभाव से पैदा होता है। परन्तु धर्म वही है जिस जगह रागद्वेष नहीं है सो रागद्वेष रहित करके तो श्रीवीतराग का धर्मही अति उत्तम है परन्तु धर्म का प्रत्यक्ष में तो कोई प्रमाण है, नहीं किन्तु अनुमान से सिद्ध करते हैं। सो इस जगह एक दृष्टान्त दिखायकर, उत्तम धर्म का अनुमान दिखाते हैं, सो अनुमान का दृष्टान्त यह है कि कोई पुरुष खेत में बीज गेरने गया, और उस खेत में जो बीज पड़ा था सो वह बीज बरसात पवन आदि की सामग्री पाकर खूब घनघोरता से उपजा श्यामता आदि लक्षणों को प्राप्त हुआ कि जिस से प्रतीति होवे कि इस खेत में अनाज बहुत होगा। इस रीति से किसी ने दूसरी जगह बीज गेरा उस खेत में भी पवन मेह आदिक की किंचित् सामग्री मिली जिस से छीदा २ उपजा और पीला २ पड़गया। उस पीले पड़जाने से अनुमान हुआ कि इस में अनाज थोड़ा होगा। अब इस जगह बुद्धिमानों ने एक खेत की तो घनघोरता और श्यामता देखकर बहुत अनाज का अनुमान किया और दूसरे खेत का छीदापन और पीलापन देखकर थोड़े अनाज का अनुमान किया। परन्तु इन दोनों जगहों में उस खाखले अर्थात् घास, फूस, भूसा के देखने से अनाज का अनुमान किया कि अनाज बहुत होगा या थोड़ा होगा। लेकिन अनाज तो अभी पैदा हुआ नहीं, वह तो अपनी ऋतु पर होगा। ऐसेही मनुष्य रूपी ज़मीन में धर्म रूपी बीज गेरा जाता है उस जगह

शुद्ध देव गुरु के यथावत् उपदेश अथवा संजोग से मनुष्य रूपी जमीन में धर्म रूपी जो बीज उस का घनघोर उपजना अर्थात् संसारी वैभव रूप घास अर्थात् खाखला की प्रबलता देखने ही से बुद्धिमान अनुमान करते हैं कि परभवादि मोक्ष रूपी धान इस में अच्छा होगा। और जिस मनुष्य रूपी खेत में धर्म रूपी बीज पड़ा उसको यथावत् देव, गुरु का उपदेश अथव संजोग न मिलने से वह छीदे खेत के समान वा पीला अर्थात् वैभव आदिक खाखला नहीं होने से बुद्धिमान विचारते हैं कि यह शख्स इतना धर्म करता है लेकिन उस के वैभव आदि खाखला न होने से पर भव का भी अनुमान होता है कि इस के पर भवादि सुख रूपी अन्न यथावत् न होगा। इस दृष्टान्त से बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि जो उत्तम धर्म है उस के ग्रहण करनेवाले लोगों को इस भव और पर भव दोनों में ही उत्तमता प्राप्त होगी। इसलिये श्रीबीतराग का धर्म अति उत्तम है॥

**शंका**—आपने जो ओसवालों की इतनी तारीफ और उत्तमता इस धर्म के प्रभाव से लिखी सो १००—५० वर्ष पेश्तर तो होगी परन्तु वर्त्तमान काल में दिन पर दिन जो जिन धर्म में ओसवाल आदि हैं उन के हुक्म हासल तप तेज आदि वैभव में हानि के सिवाय वृद्धि तो नहीं दीखती है और अन्य धर्मियों में अनेक तरह की वृद्धि होरही है तो तुम्हारे श्रीवीतराग का धर्मही अति उत्तम है यह बात क्योंकर बन सकेगी ?॥

**समाधान**— वर्त्तमान काल की व्यवस्था देखकर जो सन्देह किया सो सन्देह करना तुम्हारा ठीक है परन्तु हमने श्रीबीतराग के धर्म की अपेक्षा से दृष्टान्त दिया था नतु जिन धर्म के पक्षपात से।

और मैं ने जो ओसवाल वगैरः जिन धर्म की शोभा की थी सो कुछ पक्षपात से नहीं की थी किन्तु इन लोगों के पहिले के वैभव और कर्त्तव्य देखने में आते हैं परन्तु वर्त्तमान काल में अब कर्त्तव्य रूपी हींग न रही केवल खुशबू रूप वासना रह गई है। क्यों कि मैं ने भी ३३ की साल में अपना घर छोड़कर भीख मांगकर खाना कबूल किया था सो दो वर्ष तक तो पावापुरी आदि देशों में रहा सो बहुत संग न हुआ। परन्तु ३५ की साल से तो इन लोगों का संग बहुत हुआ और मारवाड़ ढूंढाड़ मालवा ग्वालियर आदि देशों में फिरकर भी देखा तो वर्त्तमान काल के जैनियों में देव और गुरु की शास्त्र अनुसार विनय वा भक्ति न रही। उलटी देव की तो असातना करना और गुरु का अपमान करना और गुणी और निर्गुणी की परीक्षा न होना, केवल राग द्वेष पक्षपात दृष्टि राग से कलह करना फैल गया। जब तक देव और गुरु की विनय भक्ति न होगी तब तक यथावत् जिन धर्म की प्राप्ति होना भी कठिन है क्योंकि देखो शास्त्रों में ऐसा कहा है "विनय पन्नतो धम्मो मूलो"। ऐसा दशवैकालक में लिखा है कि विनय करने से धर्म की प्राप्ति होती है इसलिये विनय ही धर्म का मूल है। दूसरे श्रीभगवतीजी में भी श्रीगौतम स्वामी ने पूछा है कि हे भगवन्! साधू की शुश्रूषा करने से क्या फल होता है? तब श्रीमहावीर स्वामी ने कहा हे गौतम! साधू की शुश्रूषा करने से दो तरह का फल है सो यह पाठ श्रीभगवतीजी में है परन्तु इस का मतबल लिखता हूं पाठ ऐसा है "दिट्ठफले आदिट्ठ फले" इत्यादि एक तो प्रत्यक्ष फल दूसरा परोक्ष फल सो परोक्ष देवलोक आदि है और प्रत्यक्ष फल को कहते हैं कि जब साधू की विनय आदि शुश्रूषा करेगा तब साधु उस को उपदेशादि देंगे, उस उप-

देश के सुनने से उस पुरुष को ज्ञान होगा। उस ज्ञान से सत्य असत्य वस्तु का विचार करेगा। उस सत्याऽसत्य वस्तु के विचार से असत्य वस्तु का हेय नाम त्याग और सत्य वस्तु का उपादेय नाम ग्रहण करेगा। जब उस ने त्याग किया तब वह शख्स व्रत में हुआ तो जो पुरुष व्रत में है उस के निर्ज्जरा अवश्य मेव होगी। जिस के निर्ज्जरा होगी उस के कर्म का बन्ध छूटकर मोक्ष की प्राप्ति अच्छी तरह होगी। यह प्रत्यक्ष फल विनय भक्ति शुश्रूषा का है। अब जैन के अलावे पर मत में भी ऐसा कहते हैं कि "गुरुशुश्रूषायां विद्या"। इस रीति से हरएक जगह हरएक मत में विनय आदि शुश्रूषा से धर्म की प्राप्ति होती है। सो वर्त्तमान काल में विनय आदि न रही किन्तु दृष्टि राग से गुरु तो मानना परन्तु उन गुरुओं को अपने हुक्म में चलाना और अपना सन्मानादि शिष्टाचारी कराना। यद्यपि किसी गुरु आदिक से थोड़ा बहुत जिन धर्म का रस्ताभी मालूम हुआ हो और वह शख्स जो उन के सन्मानादि शिष्टाचारी न करे अथवा उन के कहे को दुलख दे अथवा उस श्रावक की बेमर्ज़ी होय वा श्रावक के कहने की बरदाश्त न कर सके, तो वे श्रावक लोग दूसरे के दृष्टिराग में फंसकर उस पहले के पास जो कुछ सीखे पढ़े थे उस गुण को भूलकर उलटा उस से बैरभाव करलें और उस की अनेक तरह की निन्दादिकरके अनेक तरह से दुःख देने को मुस्तैद हो जायं इत्यादिक अनेक बातें वर्त्तमान काल में होरही हैं। यदि सर्व हाल यथावत् पतेवार लिखूं तो एक बड़ा भारी ग्रंथ इसी बात का बन जाय इस भय से नहीं लिख सक्ता परन्तु दो कवित्त मेरे बनाये हुए हैं उन को लिखता हूं। इन पर से बुद्धिमान कुल मतलब बिचार लेंगे क्योंकि चूल्हे पर चढ़ी हुई हांड़ी का एक चांवल देखने से कुल

चावलों का हाल मालूम होजाता है—सीजे हैं या नहीं। इसलिये दोनों कवित्त इस जगह लिखता हूं ॥

कवित्त—चौबे चले छबे होन छबे की बड़ाई सुन, निश्चय में दुबे बसें दुबेही बनावें हैं। पक्षपात रहित धर्म भाष्यो सर्वज्ञ आप, सो तो पक्षपात करि सबही धर्म को डुबावें हैं। पंचम काल दोष देत इन्द्रिय का भोग करें, भीतर ना रुचि क्रिया बाहर दिखलावें हैं। चिदानन्द पक्षपात देखी इस मुल्क बीच, समझें नहिं जैन नाम जैन को धरावें हैं ॥ १ ॥

पांच सात वर्ष क्रिया करिके उत्कृष्टी आप, बनिये को वहकाय फिर मायाचारी करत हैं। मंत्र जंत्र हानि लाभ कहें ताको मान करें, झूठ सुने आये तो आगे लेन जात हैं। शुद्ध प्रणति साधु रंजन ना कर सके लोगन को, मतलब बिन पास कबहूं उन के न आवत हैं। चिदानन्द पक्षपात देखी इस मुल्क बीच, समझें नहिं जैन नाम जैन का धरावें हैं ॥ २ ॥

इन का अर्थ तो खुलासा है इस लिये न लिखा सो भो देवानुप्रिय! ऊपर लिखे हालों से इस जिन धर्म की ओसवाल पोड़वालों की जाति कुल धर्म होने से इन लोगों की धर्म के ऊपर श्रद्धा कम हो जाने से और रागद्वेष, पक्षपात, कदाग्रह देव की असातना और गुरु आदिकों का अविनय तिरस्कारादि होने से वर्त्तमान काल में वृद्धि बिना हानि का प्रसंग दीखता है सो इन श्रावक लोगों की ऐसी विपरीत बुद्धि हो जाने का कारण दिखाते हैं. क्योंकि बिना कारण कार्य की उत्पत्ति नहीं होती. इस लिये अब हम कारण को दिखाते हैं सो कान देकर सुनो और आंख मीचकर बुद्धि से विचार करोगे तो तुम्हारे को शुद्ध

अनेक महत् पुरुष हो गये हैं जिन के संस्कृत वा गुजराती भाषा में अनेक ग्रंथ रचे हुए हैं। और वे लोग स्तवन सिज्झाय आदिक में जिन मार्ग को खुलासा वर्णन करते हैं। परन्तु वर्त्तमान काल में राग द्वेष पक्षपात से अशुद्ध मार्ग की परूपना वा अशुद्ध मार्ग में ही प्रवृत्त होने को तैयार होते हैं सो यह बात जब से ढूंढिया सम्वेगी तेरह पन्थी और चोथे यती इन चारों का भिन्न भिन्न चिन्ह होने से अशुद्ध प्रवृति होने लगी। तिसका कारण कहते हैं कि यती लोग जो अपने शिष्यादिक करते हैं सो उन लोगों ने तो जाति कुल वर्णादिक की अपेक्षा न रक्खी अर्थात् छोड़दी क्योंकि एक तो पड़ता काल दूसरा अंग्रेजों का राज होजाने से प्रत्यक्ष तो मोल ले नहीं सकते इसलिये दुबकाचोरी में जाति कुल वर्ण आदिक को नहीं देख सकते हैं, केवल चेला करने की इच्छा से कोई जाति खाती, कुंभार, जाट, माली, नाई, कायस्थ, चाकरादि कोई जाति हो, न उनके बाप का ठिकाना है न उन की माका ठिकाना है, न ज्ञाति का है न कुल का है, केवल चेला करने का प्रयोजन है। और वह चेलाभी कैसा करते हैं कि दो वर्ष तीन वर्ष के बालक को लेकर पालते हैं और लाड़ में उस को कुछ विद्या तो पढ़ाते नहीं हैं केवल मंगलीक वा प्रतिक्रमण या कल्पसूत्रादि मुश्किल से सिखायकर अथवा मंत्र यंत्र, झाड़ा झपाड़ा अथवा ज्योतिष वैद्यक पढ़ायकर खाली आजीविका की सूरत बताते हैं नतु धर्म के कामों में लगाते हैं। इसलिये वे शिष्य आदिक कुल ज्ञाति का तो लिहाज शरम कुछ रखते नहीं, थोड़ा बहुत गुण वा झाड़े झपाड़े से ऊटपटांग होकर व्यवहार को बिगाड़ देते हैं और जिन धर्म की हेलना कराते हैं परन्तु तिस पर भी ये ओसवाल पोरवाड़ लोग जिन धर्म्म में ज्ञाति कुल

का धर्म्म जानकर इन लोगों को आहारादिक देते हैं क्योंकि वे ऐसा समझते हैं कि ये हमारे लारे लगे हैं। इसलिये इन को कुलगुरु मानकर व्याख्यानादि किंचित् सुनते हैं सोभी बड़े आदर सत्कार से वा दस पांच बुलावे जाने से आते हैं नतु धर्म जानकर ॥

अब बाईस टोला की व्यवस्था कहते हैं कि यह बाईस टोले-वाले भी ज्ञाति पांति कुल आदिक तो देखते नहीं हैं और हरएक गांवों में छोटे २ बालकों को जोकि ८ तथा ९ वर्ष के हैं उन लड़कों को खाने पीने का लालच देकर बहकाय लाते हैं और उनको दीक्षा देकर अपना चेला बनाते हैं। अथवा स्त्रियों को चेली बनाय कर उनके पुत्रादिकों को चेला बना लेते हैं। अथवा कोई जाट, गूजर, कुंभा-रादिक भूखन मरता है वा उसको कर्जा देना है ऐसे लोग जो उनके पास आवें उनको भी खाने का लालच देना अथवा अपने दृष्टिरागी श्रा-वकों से उनको रुपया दिलवा देना। फिर उनको पुत्रों समेत दीक्षा दिरा-देना। अथवा कोई अन्य जाति के जो महा दुःखी जिन को पूरा अन्न और वस्त्र भी न मिले अथवा कर्जा आदिक जिन को देना हो कि लोग उन का पल्ला पकड़ते हैं और उन के पास नहीं है ऐसे दुःखित लोग हैं उन को श्रावकों से रुपया आदिक दिलवाय कर फिर उनको दीक्षा देते हैं। प्रायः करके ऐसेही ऐसे वैराग्यवाले इन टोलों में दीक्षा लेते हैं और कई टोलों में तो उजागर मोल लेते हैं और श्रावकों से रुपया उन के बाप और मा को दिलाते हैं। इस रीति से तो इन में साधू होते हैं। फिर वे गुरु आदिक संस्कृत अथवा व्याकरण आदिक तो पढ़ावें नहीं क्योंकि जब वह व्याकरण आदिक पढ़ेगा तो उस को शब्द का यथा-वत् बोध होने से उन के काबू में न रहेगा इसलिये, उस को एक दो मूल

सूत्र पढ़ाय कर थोड़ी बहुत बोलचाल थोकड़ों की सिखाय कर केवल ढाल, चोपाई, राग, रागणी में अच्छी तरह से प्रवीण करते हैं, किस वास्ते कि बाल जीव सूत्र सिद्धान्त में तो समझें नहीं और ढाल चौपाई में कुतूहल की बातें सुनकर लोग उन के बाड़े में बने रहें क्योंकि किसी ने दोहा कहा है "सूत्र बांचो टीका बांचो चाहे बांचो भगवती। सभा पगतली राखे चाहो, तो राग काढ़ो रसवती"॥ इस हेतु से इन लोगों में ढाल चौपाई का सीखना सिखाना बहुत है। प्रायः करके इन लोगों में जो व्यवस्था होरही है सो ज्ञानी जानता है वा ये लोग या इनके दृष्टिरागी श्रावक अथवा जिन देशों में इन का रहना है उन देशों के रहनेवाले लोग भी बहुत जानते हैं। लेकिन सब हाल यथावत् लिखूं तो द्वेष मालूम होगा सो मेरे तो कुछ द्वेष से काम है नहीं, मैंने तो प्रसंगागत् किंचित्मात्र लिखा है। हां इन में कोई २ आत्मार्थी भी होगा तो ज्ञानी जाने, मैं एकान्त करके सब को एकसां नहीं कहता हूं। प्रायः करके कदाग्रह बहुत दीखता है नतु एकान्तता से ॥

अब किंचित् पीले कपड़ेवालों का भी हाल लिखते हैं कि समेगी लोगों में कितने ही येही लोग क्रिया उद्धार करके पीले कपड़े करते हैं, कितनेही बाईस टोला तेरह पन्थियों में से निकल करके समेगी होते हैं, कितनेही दुःख से भी वैराग्य लेकर समेगी होते हैं और कितनेही मोल लेकर अपना चेला करते हैं। कितनेही गृहस्थियों के बालकों को बहकाय कर चेला करते हैं। इस रीति से समेगियों में भी चेला करने की अनेक व्यवस्था होरही हैं और कोई २ भाव से भी चारित्र लेते हैं परन्तु दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवाले प्रायः करके दीखते हैं क्योंकि आत्मार्थी तो कदाग्रह करें नहीं और कदाग्रह प्रत्यक्ष देखने में आता

है। इसी रीति से तेरह पन्थियों में भी व्यवस्था जानलेना। यह तो इन चारों की भेष बढ़ने की और साधू होने की व्यवस्था कही ॥

शंका—आपने जो दुःखगर्भित अर्थात् भूखन मरनेवाले का वैराग्य निषेध किया सो यह तुम्हारा निषेध करना ठीक नहीं। क्योंकि आगे साम्प्रति राजा के जीव ने पहिले भव में खाने के वास्ते ही दीक्षा लीनी थी तो भूखन मरनेवाले का चारित्र क्यों निषेध करते हो ? ॥

**समाधान**—भो देवानुप्रिय! अभी तुझ को जिनधर्म की खबर नहीं है, जो तुझ को जिनधर्म की खबर होती तो तेरा मिथ्यात्व रूप विकल्प कदापि न होता। क्योंकि देखो श्रीयशविजयजी उपाध्यायजी ने अध्यात्मसार के छठे अधिकार में तीन प्रकार का वैराग्य कहा है। जिस में दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्य को निषेध करके केवल ज्ञानवैराग्य की प्रशंसा की है। और दूसरा जिनधर्म में अपवाद मार्ग की पुष्टता नहीं किन्तु ग्रहण तो है, परन्तु पुष्टता उत्सर्ग ही की है। इसलिये कोई दुःखगर्भित वैराग्यवाला होय तो उस को ज्ञानवैराग्यवालों का संग होने से दुःखगर्भित वैराग्यवाले को ही ज्ञानवैराग्य होजायगा; इसलिये दुःखगर्भित वैराग्य की पुष्टता जिनमार्ग में नहीं, और जो कदाचित दुःखगर्भित वैराग्य की पुष्टता मानोगे तो वर्त्तमान काल में प्रायः करके दुःखगर्भित वैराग्यवाले दीखते हैं तो धर्म में रागद्वेष पक्षपात कलह कदाग्रह न होना चाहिये, इसलिये दुःखगर्भित वैराग्य का जिनधर्म में निषेध है। और जो तू ने साम्प्रती राजा के जीव का खाने के वास्ते वैराग्य लेना कहा, सो भी तेरा कहना ठीक नहीं हुवा। क्योंकि देखो साम्प्रती राजा के जीव ने पहिले मनुष्य भव में भूख के कारण से गुरु के पास में दीक्षा ली और उसी दिन ज्यादा आहार करने से रात्रि को पेट की वेदना उत्पन्न हुई। उस

वक्त उस वेदनावाले जीव की साधुओं ने वियावच्च करी तब उस का परिणाम जिनधर्म पर आस्था रूप कैसा शुद्ध होगया ! उस आस्थारूप परिणाम से देह को छोड़कर राजकुल में उत्पन्न हुआ और कुछ दिन के बाद वह साम्प्रती राजा अपने राज पर बैठा। फिर एक दिन गोखड़ा पर बैठा हुआ गुरु को देखकर जाति-स्मरण ज्ञान से गुरु के पास आया और नमस्कार किया और जिनधर्म को अंगीकार किया। इसलिये हे भोले भाई ! उस साम्प्रती राजा के जीव की तो तू साक्षी देने लगा परन्तु और सैकड़ों दुःखगर्भित वैराग्यवाले वर्षों तक चारित्र पालकर तुम्हारे मूजिब मरगये उन की गति तो हम को बतलाओ कि वे किस जगह के राजा हुए और जिनधर्म की उन्नति करके दैदिप्यमान अर्थात् प्रकाशमान किया सो कहो ? इसलिये साम्प्रती राजा का दृष्टान्त तेरे भूखे मरते वैराग्यवाले का साधक न हुआ किन्तु बाधक होगया ॥

अब तुम वर्त्तमान काल के भेषधारियों के उपदेश की व्यवस्था सुनो। प्रथम तेरह पन्थियों की बात कहते हैं कि जो भीकम ढूंढिया तेरह पन्थ का चलानेवाला था उस के जो साधू साध्वी हैं उन साधू साध्वियों का गृहस्थियों को ऐसा उपदेश है कि हमारे सिवाय जो दूसरे बाईस टोला वा समेगी अथवा जती हैं सो जिनाज्ञा के बाहिर हैं और इन को आहार पानी देने से तुम्हारी समकित चली जायगी और मिथ्यात्व आजायगा, इन को देने में एकान्त पाप है, निर्ज्जरा किंचित् भी नहीं है। इसलिये इन को आहार पानी न देना और वन्दना व्यौहार भी न करना। कदाचित् तुम करोगे तो जिनधर्म से विमुख होकर काली धार डूब जावोगे। ऐसे गृहस्थियों को बहकायकर मंत्र यंत्र आदिक के चमत्कार से जाल में फंसायकर केवल कदाग्रह

कराते हैं ॥

अब बाईस टोले वालों का उपदेश कहते हैं कि जितनी बाईस टोला में अलग २ समुदाय हैं वे लोग अपनी २ समुदाय में गृहस्थियों को ऐसा फंसाते हैं कि दृष्टिराग से वे गृहस्थी दूसरी समुदायवाले ढूंढियों के पास नहीं जाते हैं बल्कि कोई २ गृहस्थी तो ऐसे दृष्टिराग में फंसजाते हैं कि दूसरे ढूंढिया साधू को वन्दना भी नहीं करते और घर में आये को आगत् स्वागत् से आहार पानी नहीं देते। किन्तु लौकिक लज्जा से विना मन के कोई निरस आहारादि बहराय देते हैं परन्तु जो उन की दृष्टिरागी समुदायवाला आवे तो उस को बड़े आगत् स्वागत् शिष्टाचारी से सरस २ अच्छे आहार पकवानादि बड़े भाव से बहराते हैं, बल्कि स्त्रियों को इतना भी राग होता है कि अपने बालक आदिक को नहीं खाने देती हैं और अपने दृष्टिरागी साधुओं को बहराती हैं। इस रीति से इन लोगों ने अपनी २ समुदाय में गृहस्थियों को फंसाय रक्खे हैं और गृहस्थियों के जो कि १० तथा १२ वर्ष के बालक होते हैं उन लड़का लड़कियों को बोध तो कुछ होता नहीं है बल्कि लड़का लड़कियों से 'नौकार' भी पूरा उच्चारण नहीं होता है तिस पर भी उस को कहते हैं कि तू हमारी समकित लेले अथवा उन के बाप मा को कहकर उन को जबर्दस्ती से समकित दिलाते हैं। अब बुद्धिमान विचार करते हैं कि जब ये लोग हरएक से कहते हैं कि तू हमारी समकित लेले तो क्या इन लोगों के पास में समकित के कोठार भरेहुए हैं अथवा ये लोग जब अपनी समकित दूसरे को देते हैं तब इन के पास क्या रहेगा? इस से बुद्धिमान यह अनुमान बांधते हैं कि ये

चढ़ाय कर पंडितों के अथवा मन्दिर वा धर्मशाला वा पुस्तकों के नाम से रुपया इकट्ठा करके फिर उसी रुपये को गृहस्थियों के यहा जमा करके व्याज लेते हैं और कितने ही निकेवल गृहस्थियों की शिष्टाचारी कर २ के सैकड़ों हजारों रुपये की पुस्तकें इकट्ठी कर लेते हैं और जगह २ सन्दूक भर २ कर गृहस्थियों के यहां रखते हैं वल्कि उन समेगियों को उतना बोधभी नहीं है ऐसी २ पुस्तकें उन्हों ने गृहस्थियों का धन खरचाकर इकट्ठी की हैं। उन पुस्तकों को जन्मभर में न बांच सकेंगे और न उनका यथावत् बोध होगा, केवल मूर्च्छा रूप ममत्व से अथवा रागद्वेष से इकट्ठी की हैं। और समेगियों में इतनाभी इन दिनों में विशेष है कि खूब गाजे वाजे आडम्बर से बस्ती में घुसना और अपने दृष्टिरागी श्रावकों से प्रेरणा करायकर खूब आडम्बर कराते हैं। हां अलबत्ता कोई २ समेगी तो न्याय व्याकरण आदि थोड़ा बहुत करके टीका आदि बांचते हैं। परन्तु लोगों को रिझाने के वास्ते ऐसी चीजें बांचते हैं कि जिस से सभा के लोग सब राजी रहें। और कितनेही समेगी लोग चौमासे में कल्पसूत्रादि के बांचने के समय रुपया बुलवाते हैं और श्रावक लोगों को ऐसा उपदेश देते हैं कि जिस में श्रावक लोग राजी रहें। सो इस उपदेश का वर्णन तो जहां हम विधि का वर्णन करेंगे उस प्रकाश में लिखेंगे, यहां तो एक नाम मात्र लिखा है। इस रीति से समेगी लोगभी आपस में गृहस्थियों को अपना रागी बनाकर अथवा गच्छ समाचारी के राग में फंसाय कर रागद्वेष पक्षपात इस कदर करते हैं कि अपना वचन सिद्ध करने के वास्ते और दूसरे का वचन खण्डन करने के वास्ते पत्र वा पुस्तक रचकर जाहिर करते हैं परन्तु अपने वचन की सिद्धि के वास्ते परभव से न डरते हुए

उस ग्रंथ को छपायकर जाहिर करते हैं सो मैं नाम तो किसका लिखूं परन्तु वे पुस्तकें सब जगह प्रसिद्ध और मौजूद हैं। और उन पुस्तकों को बांच २ कर गृहस्थी लोग आप्स में लड़ते हैं। और कितनेही क्रिया उद्धार किये हुए जो संवेगी हैं वे ढूंढियों की तरह अपनी समकित उच्चरवाते हैं अर्थात अपने बाड़े में फंसाते हैं। बल्कि इन संवेगियों मेंभी आपस में इतना रागद्वेष है कि अपने २ श्रावकों को ऐसा सिखलाय देते हैं कि वे श्रावक लोग नित्य का व्याख्यान सुनना तो एक तरफ रहा बल्कि चौमासे में जो कल्पसूत्र आदि बंचें तो अपने गुरु के द्वेषवाले से न सुनें। बल्कि आठ रोज तक वे श्रावक दस पांच मिलकर कल्पसूत्र को खुदही बांचते हैं। और जो साधू का कृत्य है सो अपने आपही कर लेते हैं। उन में से एक जना तो बतौर साधू के बैठकर गृहस्थी के कपड़े पहने हुए आसन बिछाकर कल्पसूत्र बांचता है और जो दस पांच उन के ममत्व रागवाले हैं सो सुनते हैं। यद्यपि जैन शास्त्र में गृहस्थियों को सूत्र बांचना मना है तिस परभी वे श्रावक लोग रागद्वेष में फंसे हुए पर भव से नहीं डरते हैं। इस रीति से जो उत्कृष्ट साधू बाजते हैं और कहते हैं कि हम जिनमार्ग को चलानेवाले हैं, जब इन्हीं लोगों का इस कदर रागद्वेष पक्षपात होरहा है तो यती विचारों की तो व्यवस्थाही क्या लिखें ? हां अलबत्ता यती भी कोई २ अच्छे हैं वे ज्योतिष वैद्यक आदि से अपना काम चलाते हैं परन्तु यती लोगों के केवल चौमासे में ८ दिन पजूसन में व्याख्यान बांचने की रीति जबर्दस्ती से चलती है क्योंकि वे लोग दस २ दफा सेवकों को भेजकर उन अपने गच्छवाले श्रावकों को बड़ी मुश्किल से बुलाय कर ८ दिन की समाचारी करते हैं. क्योंकि उन का जो कृत्य था सो

इस काल के उत्कृष्ट साधू नाम धरानेवालों ने गृहस्थियों की खुशामद करकरके छीन लिया क्योंकि गृहस्थियों को जगह २ टोकने वा बुलाने से उन की श्रद्धा हीन होगई। और पेश्तर तो भव्य जीव आत्मार्थी धर्म के अभिलाषी मुनिराजों को धर्म के वास्ते खोजते फिरते थे ताकि मिथ्यात्व रूपी अग्नि जब बुझे तब धर्मरूपी अमृत पान करावें। सो अभी के काल में जाति कुल धर्म होने से अभिलाषाही नहीं रही किन्तु उलटे साधू लोग भिन्न भिन्न गच्छ समाचारी ममत्व रूप से श्रावकों को खोजते अथवा बुलाते हुए फिरते हैं। क्योंकि देखो जिस पुरुष को पानी की प्यास लगी है वह पुरुष कुए पर जाय रुचि सहित जल को पान करे परन्तु जो उस पुरुष को प्यास नहीं हो तो उस के वास्ते शीतल जल अमृत रूपभी होय तौभी वह उस को पान न करे। इस दृष्टान्त को बुद्धिमान विचार लें कि इस जैनमत के साधू साध्वी गृहस्थियों को जबर्दस्ती बुलाय २ कर शिष्टाचारी से उन का मान बढ़ाते हैं। अब मैं इस व्यवस्था को लिखने से दिक् हो चुका इस लिये इस के समाप्त करने के वास्ते किंचित् लिखकर उपाध्याय श्रीयशविजयजी के किये हुए सवासौ गाथा के स्तवन की एक गाथा लिखकर समाप्ति करता हूं। देखो जो मैंने जाति कुल ममत्व रूप नगर का वर्णन किया था सो उस नगर में गच्छादि समाचारी भेद अथवा संवेगी ढूंढिया तेरह पन्थी इन के जुदे जुदे भेद वा जुदी २ परूपना होने से और गृहस्थियों की शिष्टाचारी करने से इस अमूल्य चिन्तामणि रूप श्री बीतराग के धर्म की आस्था न रही और ओसवाल पोड्वाल वगैरः में जाति कुल धर्म होगया। इस जाति कुल धर्म के होजाने से अथवा जुदी २ परूपना होने से धर्म के ऊपरसे आस्था उठगई।

इसीलिये श्रीयशविजयजी महाराज की कही हुई गाथा अर्थ समेत लिखते हैं। "वहु मुखे बोल एम सांभली नवि धरे लोक विश्वासरे। ढूंढता धर्मने ते थया, भमर जेम कमलनी वासरे" ॥ १ ॥ व्याख्या—एम वहु मुखे के० घणाने मोंढे वोल जुदा जुदा सांभलीने लोको विसवासने धरे नहीं जेम भमरा कमलनी वासनानी इच्छाये भमता फिरे पण केरडोय ते न पामे, तेम ते लोको धर्मने ढूंढता थया जे कोण साधु पासे धर्म होशे ? एवा संभ्रमे फरे ॥

जो इस गाथा का अर्थ श्रीपद्मविजयजी ने किया था सो तो लिखा परन्तु मेरी बुद्धि अनुसार किञ्चित् मैं भी लिखता हूं—वहु मुखे बोल के०. वहुत जनों के मुख से नाना प्रकार के जो वचन सो दिखाते हैं कि कोई तो चौथ की छमंछरी, कोई पंचमी की छमंछरी करते हैं, कोई चौदस की पक्खी, कोई अमावस्या पूर्णमासी की कराते हैं। कोई चवदस घट जाने से तेरस में चवदस कराते हैं और कोई पूर्णमासी अमावस्या में करते हैं। कोई तिथि वढ़जाने से पहिली तिथि मानते हैं और कोई दो अष्टमी होने से सप्तमी दो करते हैं, अष्टमी एकही मानते हैं। कोई पूर्णमासी टूट जाय तो तेरस को टूटी तिथि मानें अर्थात् तेरस को घटाय दें परन्तु पूनम अमावस्या को न घटावें। चौमासे में दो श्रावण अथवा दो भादवा होने से कोई तो दूसरे श्रावण और पहले भादवा में पजूसन करता है और कोई पहले भादवा या पिछले भादवा में करता है। कोई पहले इरियावही पीछे करेमिभंते करता है, और कोई पहिले करेमिभंते और पीछे इरियावही करता है। कोई तीन करेमिभंते और कोई एकही करता है। कोई एकासने आदिक के पच्चक्खाण में आणेसलेवा पाणेसलेवा आगार श्रावक को कराते

जिस रीति से हम ऊपर लिखेहुए भिन्न २ परूपना के बचनों को लिख आये हैं उस रीति के बचन सुनकर लोक विश्वास न धरें क्योंकि देखो ऊपर लिखे हुए भिन्न २ बचनों में से किस बचन पर विश्वास धरें ? किस के बचन को सत्य जानकर अंगीकार करें ? और किस के बचन को असत्य जानकर छोड़ें ? इसलिये लोगों को किसी के ऊपर विश्वास नहीं होता किन्तु जाति कुल दृष्टिराग से जिस की पक्ष में बंधे हुए हैं उस ही की रीति करते हैं नतु धर्म जानकर। इसलिये इस जिन मत में जो जाति कुल की स्थापना हुई है वे विचारे ढूंढते हैं क्योंकि " ढूंढता धर्मने ते थया भमर जेम कमलनी वासरे " इस जैनमत में जो जाति स्थापी गई है उन में कितने ही भव्य जीव आत्मार्थी संवेगी, यती, ढूंढिया, तेरह पन्थियों के पास धर्म को पूछते फिरते हैं जैसे भमरा कमल २ के ऊपर वासना लेता है परन्तु यथावत् वासना न मिलने से वह कमल २ के ऊपर बैठता फिरता है। तैसेही भव्य जीव आत्मार्थी भी श्रीबीतराग का धर्म यथावत् न मिलने से जगह २ भटकते हैं और उन को सिवाय क्लेश के शान्ति होने का मार्ग नहीं मिलता है। इसी कारण से गृहस्थी लोग भी धर्म की आस्था से हीन हो कर रागद्वेष पक्षपात रूप भंग के नशे में जाति कुल अभिमान में भरेहुए जैन धर्म के साधु साध्वियों पर हुक्म चला पच्चक्खाण आदि करने को घर रप बुलाते हैं तथा पढ़ाने के वास्ते भी घर पर बुलाते हैं। सो कितने ही साधु साध्वी उन गृहस्थियों के कहने मूजिब ही हुक्म उठाते हैं और इसीलिये धर्म के अविश्वास से कितने ही गृहस्थी लोग देव द्रव्य गुरु द्रव्य भक्षण करने में भी किसी तरह की शंका नहीं करते अर्थात् भक्षण ही करते हैं। और कितने ही श्रा-

चक लोग आडम्बरी साधू के पक्ष में बंध कर अपनी आजीविका के वास्ते अन्य गृहस्थियों को जो कि भोले लोग हैं उन को उन आ-डम्बरियों के जाल में फंसाय कर बतौर सिद्ध साधक के परभावना स्वामी वत्सल अट्ठाई महोत्सव आदिक अपनी आजीविका के वास्ते खूब ऊधम मचाते हैं। इन बातों को किसी २ जगह प्रसंग आने से जहां हम विधि कहेंगे उस जगह युक्ति और शास्त्रों के प्रमाणों से लिखेंगे। इस जगह तो हम को प्रयोजन इतना ही था कि इस जिन धर्म में जाति कुल अर्थात् जिजमान पुरोहिताई के बतौर होने से जिन धर्म की व्यवस्था अन्य की अन्य हो गई। क्योंकि देखो ओसवाल पोड़वाल आदि लोगों ने तो ऐसा समझ लिया कि जिन धर्म हमारी जाति व कुल का है, ये साधु साध्वी भी हमारे जाति कुल के गुरु हैं। इस लिये जिन धर्म में जो कहा था कि श्रावक नाम किसका है कि श्रवणोपासकाः अर्थात् श्रवण जो कहिये साधु उस की जिस को है उपासना उस को श्रावक कहते हैं। सो इन लोगों ने भी यही जान लिया कि हमारे सिवाय दूसरी जगह तो मांगने को जा नहीं सकते इस लिये हर एक गृहस्थी योग्य हो या अयोग्य गरीब हो या तालेवर सबही इन साधु साध्वियों पर इतना जोर शोर रखते हैं कि जैसे सेवकों पर हुक्म चलाते हैं। गृहस्थी तो चार बातें साधु साध्वियों को सुनाय दें और धमकाय दें और अपनी मर्जी के माफिक करावें। कदाचित् कोई साधू सत्य बात कहे और उन गृहस्थियों की मर्जी माफिक न हो तो उसी वक्त उस साधु को धमकावें और वन्दना व्यौहार तथा जाना आनाही बिलकुल छोड़दें और हरेक जगह उस की निन्दा करते फिरें अथवा अनहुआ दूषण भी उस को लगाय कर

जगत में प्रसिद्ध करते हैं। परन्तु इतना नहीं समझते हैं कि ऐसे २ झूठे दूषण लगायकर अपना कर्म क्यों बांधते हैं और जिन धर्म की हेलना क्यों कराते हैं। क्योंकि देखो जो साधु साध्वी वर्त्तमान काल में हैं उनकी ज़ाति कुल देश आदि बाप दादे को कोई नहीं जानता, केवल लोग यही जानते हैं कि ये जिनधर्म के साधू और ओसवालों के गुरु हैं। इसलिये उन साधु साध्वियों की तो कुछ हंसी नहीं होती किन्तु जिनधर्म वा ओसवालों की लोग हंसी करते हैं कि यह जिनधर्म के साधु ओसवालों के गुरु हैं। सो ऐसा तो उन गृहस्थियों को खयाल नहीं है परन्तु भेषधारी वा भेषधारियों के अन्तेवाशी अर्थात् दृष्टिरागी अपनी जिव्हा की लोलुपता से माल खाने के वास्ते गच्छादि ममत्व में भोले जीवों को फंसाय कर कदाग्रह करते हैं। इस व्यवस्था को बुद्धिमान बिचार कर समझें कि जिनधर्म का मुख्य पदार्थ का निर्णय जिस में आत्मा का अर्थ अर्थात् धर्म की प्राप्ति सो तो कदाग्रह से छिपगया और धूम धमाधम चल गई। इसलिये कारण को कार्य और कार्य को कारण मान लोगों ने अपनी २ मन कल्पना से अनेक व्यवस्था करदी सो बुद्धिमान अपनी बुद्धि से बिचार कर इस लेख को बांचकर समझ लेंगें। इत्यलम् विस्तरेण ॥

॥ इतिश्रीजैनाचार्य मुनि श्रीचिदानन्द स्वामी विरचितायां
द्वितीय प्रकाश समाप्तम् ॥

---

## तृतीय प्रकाश।

अब तृतीय प्रकाश और द्वितीय प्रकाश का सम्बन्ध कहते हैं कि द्वितीय प्रकाश में क्या बात कही थी कि जिस के सम्बन्ध से

तृतीय प्रकाश का वर्णन होता है। द्वितीय प्रकाश में कारण कार्य विपरीत होने की व्यवस्था कही है तो अब इस तृतीय प्रकाश में कारण कार्य को यथावत कहनेवाले कौन होते हैं इसलिये इस जगह कारण कार्य के पेश्तर कहनेवाले की आवश्यकता हुई। इस वास्ते इस जगह शुद्ध और भगवत् की आज्ञा के अनुसार कारण और कार्य यथावत् कहनेवाले गुरु का वर्णन करते हैं। गुरु अर्थात् साधु में क्या लक्षण होता है उस लक्षण का वर्णन करते हैं। प्रथम तो साधु पञ्च महाव्रतधारी हो सो पंच महा व्रत का नाम कहते हैं कि प्रथम प्रणातिपात विरमण अर्थात् किसी जीव को न मारे; दूसरा मृषावाद विरमण अर्थात् झूठ न बोले; तीसरा अदत्तादान विरमण अर्थात् किसी प्रकार की चोरी न करे; चौथा मैथुन विरमण अर्थात् किसी रीति से स्त्री का संग न करे; पांचवां परिग्रह विरमण अर्थात् नव विध परिग्रह में से कोई तरह का परिग्रह न रक्खे। इन पांचों महा व्रत का वर्णन "श्री-आचारंगजी" व श्री "दशवैकालक" में साधु के आचार विचार के वास्ते आचार्यों ने लिखा है। फिर वह साधु कैसा हो कि दोनों वक्त पडिलेहणा करे और ४२ दूषण टालकर आहार लेवे और दिन रात में चार दफे सिज्जाय करे और ७ वार चैत्यवंदन करे। इस शास्त्रोक्त सर्व रीति से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से अपने साधुपने को पाले रागद्वेष रहित करके। विस्तार करके वर्णन तो हमने "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" में गुरु के प्रकरण में लिखा है और २ ग्रंथों में भी साधु का वर्णन किया है इस लिये यहां नाममात्र कहा है॥

शंका—कदाचित साधु शास्त्रोक्त पञ्च महाव्रतधारी अर्थात् शास्त्रोक्त चारित्र से शिथिल होय तो परूपना करने में क्या चारित्र अटकता

बहुत शोभा करतें २ अपने २ घर को चले गये परन्तु वह रत्न लेने वाला श्रावक बैठा रहा और अकेले में मुनि से कहने लगा कि हे भगवन् ! आज तो आपने परिग्रह त्याग रूप व्याख्यान बहुत अच्छा दिया । उस वक्त साधुजी समझकर कहने लगे कि भो देवानुप्रिय ! मैं तेरा बड़ा उपकार मानता हूं कि तू ने मुझ को परिग्रह रूपी जाल में से निकाला । जब वह श्रावक भी बहुत प्रसन्न होके वन्दना आदि करके अपने घर चला गया । इस कथा के लिखने का प्रयोजन यह है कि जब तक वह रत्न उस साधु के पास रहा तब तक परिग्रह के त्याग में यथावत् परूपना न कर सका, जब उस साधु के पास से वह रत्न जाता रहा, तब परिग्रह के त्याग का व्याख्यान अच्छी तरह से देने लगा । इस लिये जो आप त्यागी होगा वही दूसरों को त्याग करावेगा । कदाचित् अपने में कुछ भी शिथिलाचार होगा तो वह यथावत् आचार की परूपना कदापि न कर सकेगा । इस लिये जो शुद्ध आचारवाला है वही शुद्ध परूपना करेगा नतु अशुद्ध आचारवाला ॥

**शंका**—अजी तुमने यह कथा कही सो तो ठीक है परन्तु शास्त्रों में कहा है कि जिस का दर्शन अर्थात् श्रद्धा शुद्ध होगी वह पुरुष परूपना भी शुद्ध करेगा क्योंकि उस के चारित्र का क्षय उपशम नहीं है परन्तु दर्शन ज्ञान तो है । यथोक्तं " दंसणभट्टो भट्टादंसण भट्टस्स नत्थी निव्वाणं सिज्झंति चरणरहिया न सिज्झंति दंसण रहिया " ॥

**समाधान**—भो देवानुप्रिय ! जो तुमने कहा कि जिस का दर्शन शुद्ध है वह परूपना भी शुद्ध करेगा क्योंकि उस के चारित्र का अभी क्षय उपशम नहीं है तो हम तुम को यह बातं पूछते हैं कि

सर्व्वव्रती चारित्र का क्षय उपशम नहीं है या देशव्रती चारित्र का क्षय उपशम नहीं है या दोनों का नहीं है? जहां पहिले दोनों का क्षय उपशम नहीं है उस को तो केवल श्रद्धा मात्र है, क्योंकि वह तो समकित दृष्टि की गिन्ती में है। यद्यपि उस का दर्शन शुद्ध है परन्तु उस को देशना देने का अधिकार नहीं है। और जो तुम कहो कि सर्वव्रती के चारित्र का क्षय उपशम नहीं है तो वह देशव्रती श्रावक हुआ। तो देशव्रती श्रावक को भी सभा को भेली करके देशना देने का अधिकार नहीं है क्योंकि देशव्रती श्रावक अर्थात् गृहस्थी को सूत्र बंचानेवाले साधु को "निशीथ सूत्र" में प्रायश्चित कहा है। निशीथ सूत्र के उगणीसवें (१६) उद्देसा में कहा है सो पाठ यह है— "सेभिक्खुवाणिउत्थियं वा गारात्थियं वा वएइवायंतं वा साइज्जइ तस्सणं चाउम्मासियं"। इस से श्रावक जो देशव्रती है उस को सूत्र बांचने का अधिकार नहीं, तब सभा को भेली करके देशना देना कैसे बनेगा? इस लिये चारित्र के लिये विना देशना देना नहीं बनता। दूसरी और सुनो। जब तुम कहते हो कि हमारा दर्शन शुद्ध है तो देशना देने में क्या अटकता है? इस तुम्हारे कहनेही से मालूम होता है कि तुम्हारा दर्शन अशुद्ध है क्योंकि जो तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध होती तो चारित्र अर्थात् साधुपना पालने का निषेध करके अपनी देशना देना स्थापन न करते, क्योंकि जिस को श्रीवीतराग के वचन के ऊपर श्रद्धा अर्थात् विश्वास है वह सत्पुरुष तो एक बात को कदापि न स्थापेगा। इस लिये श्रद्धा शुद्ध बतायकर भोले जीवों को रिझायकर अपनी आजीविका चलाने का काम है नतु धर्मदेशना। तीसरा और भी सुनो। शास्त्रों में ऐसा कहा है कि "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गाणि" ऐसा

श्रीतत्वार्थ सूत्रजी में कहा है। सो इस वचन से तो मालूम होता है कि तीनों चीज़ अर्थात् सम्यक् दर्शन, ज्ञान, और चारित्र एक जगह होने सेही मोक्ष होगी नतु एक दर्शन, ज्ञान वा चारित्र से ही; क्योंकि जो एक दर्शन ज्ञान वा चारित्र सेही मोक्ष माननेवाले हैं उन कोही शास्त्र में मिथ्यात्वी कहा है। इस लिये यह तुम्हारी शंका केवल भोले जीवों को बहकायकर जाल में फंसाना है नतु धर्मदेशना ॥

**शंका**– अजी यह तो तुमने एकान्त दर्शन शुद्धि को ठहरायकर समाधान किया परन्तु श्रीभगवतीजी में पच्चीसवां शतक छठे उद्देसे में ऐसा कहा है कि "वकुश और कुशील इन दो निर्ग्रंथों से श्रीमहावीर स्वामी का शासन छेड़ले आरे तक चलेगा" इस लिये देशना देने में पासत्था कोभी कुछ हर्ज नहीं, क्योंकि देशना देना तो ज्ञान से होता है। इस लिये जो ज्ञान करके संयुक्त बहुश्रुत हैं और चारित्र करके हीन हैं तोभी ज्ञानसयुंक्त देशना देना ठीक है ॥

**समाधान**—भो देवानुप्रिय! तेरे इस वचन के कहने से हम को मालूम हुआ कि बंचकों में तुम भी बञ्चक पूरे हो, क्योंकि देखो इस अपनी स्वार्थ-सिद्धि अर्थात् चारित्र में शिथिल होकर इस पासत्थे-पने को पुष्ट करने के वास्ते तो तुमने श्रीभगवतीजी सूत्र के जिस शतक उद्देसा से अपना मतलब निकले उस को तो अंगीकार किया परन्तु जिन २ सूत्रों में पासत्थों का निषेध किया है उन सूत्रों में तुम्हारी दृष्टि न पहुंची सो अब देखो हम तुम्हारे वास्ते उनही सूत्रों का पाठ दिखाते हैं। सो तुम उनको भी अंगीकार करो कि जिस से तुम्हारा कल्याण हो और जिनराज की शुद्ध आज्ञा पले और जिनधर्म की उन्नति होय। अब सूत्रों का पाठ लिखते हैं– "पासत्थो उसन्नो होई कुशीलोतहेवसँ-

सत्तो अहछन्दो अवदणिज्जा जिणमयम्मि । ", " पासत्थाइवंदं मायास्स नेव किति ननिज्जरा होइ जायइ काय किलेसोवंधो कम्मणस्स आणाई ।" " ज्जहलो असिला अप्पपिवोलएतहाविलया पुरिसिपिइय सारंभो अगुरु परमप्पाणं चवोलेई ।" "कियकम्मँच पसँसासु असील जणम्मि कम्मबंधो-यजेजे पमाय ठाणा तेते उव२वुहियाहुंति ।" इन चारों गाथाओं का किंचित् अर्थ लिखते हैं । पासत्था के० पास में जो वस्तु हो और उस में प्रवृत्त न हो उसी का नाम पासत्था है । उस के तीन भेद हैं-१ ज्ञान पासत्था २ दर्शन पासत्था ३ चारित्र पासत्था । ज्ञानपासत्था उस को कहते हैं कि पुस्तक पन्ना तो गृहस्थियों से लेकर बहुत इकट्ठे करे और उन पुस्तक पन्ना को न बाँचे न विचारे अथवा उन पुस्तकों को बांचने के लायक बोध न हो और केवल पुस्तकेंही इकट्ठी करे; क्योंकि पुस्तकें बहुत होंगी तो चेला उन के बहुत होंगे अथवा उन के लोभ से वे चेला टहल चाकरी करते रहेंगे । अब दर्शन कुशीलिया को कहते हैं कि लोक में दिखाने को तो जिनाज्ञा बहुत कहे परन्तु अन्तरंग में उस के जिन-वचन पर विश्वास नहीं क्योंकि केवल बोलचाल ढाल चौपाई गृहस्थियों को रिझाने के वास्ते सीखे और लोगों में कहे कि जिन-मार्ग बहुत उत्तम मोक्ष का देनेवाला है, परन्तु अपने अन्तरंग में उस धर्म की रुचि नहीं है इसलिये दर्शन पासत्था है । अब चारित्र पासत्था कहते हैं कि जो चारित्र लेकर अनेक तरह के विषय आदि को सेवे अर्थात् जिव्हा की लोलुपता से इन्द्रियों के विषय भोग करे और लोगों में साधु बनवे कारण कई अपवाद मार्ग की स्थापना करे सो चारित्र पासत्था है । अब उसन्ना के भेद कहते हैं कि उसन्ना भी दश प्रकार की है जो शास्त्रों में समाचारी है उसे यथावत न करे,

वे कारण हाथ पग धोवे, आवश्यक आदि में आलस्य करे इत्यादि अनेक रीति से उसन्ना के शास्त्रों में वर्णन किये हैं। ऐसेही कुशीलिया के० विनय आदिक से भेद लेकर अनेक तरह से ज्ञान दर्शन चारित्र का विराधक हो। सँसत्था उसे कहते हैं कि जो उत्कृष्टा साधु मिले तो उसके संग में उत्कृष्टा साधु बनजाय और पासत्था देखे तो उन में शिथिलाचारी बन जाय । क्यों कि एक मसल है "जहां देखे थाली परात, वहां गावें सारी रात" अर्थात् जैसे में तैसा होजाय । खरतर की सामग्री जियादा देखे तो खरतर होजाय और तपों की सामग्री जियादा देखे तो तपा हो जाय अर्थात् कीर्त्ति पूजा अथवा बहुत लोग मनाने के वास्ते व माल खाने वा चेला चेली बहुत करने के वास्ते जो इधर के उधर जाते फिरें वे संसत्था हैं। अब स्वच्छन्दा का लक्षण कहते हैं कि जो गुरु आदि की आज्ञा अथवा जिनाज्ञा को लोप कर अपनी इच्छाचारी से मन की कल्पना से थाप उथाप करे और अपनी इच्छा मूजिब चले उसे स्वछन्दा कहते हैं। इन पांचों के वास्ते जिनागमों में अर्थात् शास्त्रों में वन्दना अर्थात् नमस्कार करने की मनाई की है। जब इन को वन्दना करने ही को मना किया है तो देशना क्योंकर बने? और दसरी गाथा में वंदना के लिये ग्रंथकार लिखते हैं सो कहते हैं "पासत्थाई वंदमाणस्स नव कित्ति न निज्जरा होई" के० पाच प्रकार के जो पासत्थे कहे हैं उन को वन्दना अर्थात् नमस्कार करने से कीर्त्ति न होवे, क्योंकि देखो जब आचार हीन क्रियाहीन को जो लोग वंदना नमस्कार करेंगे तो अन्य मतवाले लोग देखकर हसेंगें और कहेंगे कि कैसे भ्रष्टाचारी इन के गुरु हैं! इस रीति से लोग कीर्त्ति की जगह अपकीर्त्ति करेंगे । और जो आचारवान्

शुद्ध क्रिया के करने वाले हैं उन को वन्दना करने से लोग प्रशंसा करेंगे कि इन के गुरु कैसे आचारवान्, क्रियापात्र, शुद्ध, उत्तम पुरुष हैं और जो लोग इन को मानते हैं उन की बड़ी अच्छी बुद्धि और समझ है क्योंकि वे सत् पुरुषों के ही माननेवाले हैं। दूसरा और भी देखो कि उन पासत्था आदि को वन्दना करने या मानने से बाल जीवादिक उन के फन्दे में फंस जाते हैं और उन बालजीवों को धर्म की प्राप्ति तो होती नहीं किन्तु दृष्टिराग में फंस कर वे कलह में पड़ जाते हैं। जब उन की वन्दना में कीर्त्ति नहीं है तो निर्ज्जरा कैसे होगी ? इस लिये न कीर्त्ति है और न निर्ज्जरा, केवल काया को क्लेश देना है; क्योंकि उठना बैठना माथा नीचे नवाना इस के सिवाय और तो कुछ फल है नहीं किन्तु उलटा कर्म बन्ध हेतु दीखता है। क्योंकि भगवान की आज्ञा में धर्म है, और इन पाँचों को वांदने की भगवान की आज्ञा नहीं है। जब भगवान की आज्ञा नहीं है तो इसी में कर्मबन्ध हेतु है। फिर तीसरी गाथा में इन का संग करने का फलभी दिखाया है। जो कोई इन का संग करेगा वह सँसार रूपी समुद्र में डूबेगा। क्योंकि देखो जैसे लोहे की शिला पर कोई पुरुष बैठकर तिरा चाहे तो कदापि नहीं तिरेगा किंतु डूबेहीगा। क्योंकि " गुरु लोभी चेला लालची दोनों खेलें दाव। दोनों वापड़ डूबिया बैठि पथर की नाव "॥ अब चौथी गाथा का अर्थ कहते हैं कि जो इन की प्रशंसा आदिक करना है सो सँसार में कर्म बँध हेतु है क्योंकि देखो जो पाच प्रकार के पासत्थे आदि हैं उन की वन्दना स्तुति आदि करने से वे औरभी सुखशीला अर्थात् शिथिलाचारी हो जायगे; क्योंकि जो २ प्रमाद का स्थानक है उस को सेवन

भोले जीवों को दिखाय कर जो अपने में साधुपना ठहराते हो स जिनाज्ञा विरुद्ध करते हो। इस जगह मुझ को एक कवित्त याद आया है सो लिखता हूं ॥

कवित्त । पञ्चम काल दोष देत जैना उन्मत्त भये, स्थापत अपवाद करें मोंड़े की कहानी है। द्विविध धर्म कह्यो निश्चय व्यवहार लयो, कारण अपवाद ऐसी आप ही बखानी है॥ प्रायश्चित करे गुरु संग चित्त चारित्र धरे, श्रद्धा और ज्ञान यही स्याद्वाद की निशानी है। चिदानन्द सार जिन आगम को रहस्य यही, आज्ञा विपरीत वही नर्क की निशानी है ॥ १ ॥

इसलिये भो देवानुप्रिय ! अपनी बुद्धि विचक्षण को छोड़कर अपनी आत्मा के कल्याण करने की इच्छा होय तो श्री वीतराग सर्वज्ञ देव के अनेकांत वचन को एकान्त वचन करके मत स्थापो। क्योंकि देखो जिस पुरुष के वीतराग के वचन पर शुद्ध श्रद्धा है वह पुरुष कारण पड़े अपवाद मार्ग से चारित्र में दूषण लगावे परन्तु अपने दूषण छिपाने के वास्ते जो कि छेद ग्रंथों में जो वचन कहे हैं उन को आगे रखकर अपने में साधुपना अर्थात् शुद्ध चारित्र न ठहरावेगा किन्तु कोई पूछे तो यही कहेगा कि मेरे कारण से दूषण लगा है परन्तु साधु का मार्ग यह नहीं है मैं ने लाचार होकरके इस काम को किया है सो कारण मिटने से इस काम को न करूंगा। कदाचित् मेरी लोलुपता से न छूटे तो मैं भगवत्-आज्ञा-विराधक होऊँगा। इसलिये जो पुरुष ऐसा कहते हैं वेही पुरुष आत्मार्थी हैं। इस लिये श्रीआनन्दघनजी महाराज चौदवें श्रीअनन्तनाथजी के स्तवन में ऐसा कहते हैं "पाप नहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिसो। धर्म्म नहीं कोई जग सूत्र सरिषो" ॥ यह तुक छठी

गाथा में है। इसलिये आत्मार्थी पुरुषों को विचारना चाहिये कि एकान्त मार्ग को न स्थापें, एकान्त स्थापने से संसार की वृद्धि के सिवाय और कुछ नहीं है। इसलिये आत्मार्थी को यही उचित है कि कारण पड़े तो अपवाद मार्ग को अंगीकार करे परन्तु अपवाद मार्ग को स्थाप कर प्रवृत्ति मार्ग में न दृढ करे न करावे, और न दृढ करनेवाले को भला जाने क्योंकि अपवाद मार्ग है सो तो उत्सर्ग को सहाय देनेवाला है नतु अपवाद प्रवृत्ति में चलनेवाला। कदाचित् अपवाद मार्ग से ही प्रवृत्ति मार्ग चलना श्रेय होता तो श्रीवीतराग सर्वज्ञ देव उत्सर्ग मार्ग प्रवृत्ति में कदापि न चलाते और इस उत्सर्ग मार्ग की ग्रंथों में रचना भी न होती। इसलिये बुद्धिमानों को अपनी बुद्धि से विचार करके श्री वीतराग की आज्ञा अँगीकार करना चाहिये। अब इस जगह हम इन्हीं बातों के प्रश्नोत्तर वा चर्चा लिखें तो ग्रँथ बहुत लम्बा होजाय, इस भय से नहीं लिखते। परन्तु आत्मार्थियों के वास्ते इतनाही लिखना काफी है नतु दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालों के अथवा आजीविकावालों के वास्ते। अब यहाँ कितनेही शख्स ऐसा कहते हैं कि हम शुद्ध चारित्र पालते हैं इसीलिये हमारी देशना से भव्य जीवों का उपकार होगा। ऐसा कहनेवालेभी दंभी, धूर्त्त, महा ठग मालूम होते हैं क्योंकि उन लोगों के मुख से अक्षर तो शुद्ध उच्चारण होताही नहीं है और उन को अपनी आत्मा काही बोध नहीं है तो वे देशना देकर क्योंकर भव्य जीवों को तारेंगे? केवल कपटाई अर्थात् माया से बाह्य क्रिया करके लोगों को भ्रमजाल में फंसाते हैं नतु शुद्ध चारित्र में प्रवर्त्तना है जिन की॥

शंका— अजी तुम ऐसा कहते हो कि वे बाह्य क्रिया करते हैं और उन में आत्मबोध नहीं है सो तुम्हारा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि

देखो उन लोगों में थोकड़ा आदिक बोलचाल भांगे वगैरे: की चर्चा तो बहुत है। और सूत्र भी बाँचते हैं सोभी मूल पैंही अर्थ करते हैं इसलिये उन की क्रिया और देशनाभी ठीक है ॥

**समाधान**—अरे भोले भाई ! नेत्र मींचकर कुछ बुद्धि से विचार कर। वाह्यक्रिया करने से कुछ जिनधर्म्म के चारित्र की प्राप्ति नहीं होती। जो वाह्य रूप लोगों के दिखाने के वास्ते, क्रिया करने सेही चारित्र प्राप्त हो तो ३६३ पाषण्डी जो क्रियावादी अक्रियावादी हैं उन में भी चारित्र होना चाहिये, सोतो नहीं। इस लिये जो ज्ञान सहित क्रिया शास्त्रानुसार श्रीभगवतकी आज्ञा से करनेवाले हैं उनहीमें साधुपना गिना जायगा। जो आत्मसत्ता ओलखे विदून क्रिया अर्थात् तप सँयम कष्ट आदि करते हैं और जीव अजीव पदार्थ की सत्ता जानी नहीं, उनको श्रीभगवती सूत्र में अव्रती, अपचक्खाणी कहा है। जो अकेली वाह्य करनी करके लोगों में अपना साधुपन ठहराते हैं सो मृषावादी हैं ऐसा श्रीउत्तराध्ययनजी सूत्र में कहा है कि "नमुणीरन्नबासेणं" इति वचनात्। इसलिये जंगल में भी रहे और एकली वाह्य क्रिया करे सो ठग है। किन्तु शास्त्रों का ऐसा वचन है कि ज्ञानी है सोही मुनि है तथाच उत्तराध्ययनजी में "नाणेणय मुनिहोइ" कहाहै। औरजो तुमने कहा कि बोल चाल अथवा यती श्रावकों के आचार जाने इसलिये वे ज्ञानी हैं यह कहना भी तुम्हारा ठीक नहीं। क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि जो द्रव्याणु जोग अर्थात् द्रव्य गुण पर्याय जाने सो ही ज्ञानी है श्रीउत्तराध्ययन मोक्षमार्ग में कहा है गाथा "एयं पंचविदणानां दव्वाणय गुणाणय पज्जवाणय सव्वेसिं नाणँ नाणीहिदंसियं"। इसलिये वस्तु सत्ता जाने बिना ज्ञानी न कहिये। क्योंकि जब तक नव तत्व न जाने अर्थात् ज्ञेय हेय उपादेय के

विना जाने जो कहै कि हम चारित्रवन्त हैं सो भी मृषावादी हैं क्यों कि देखो श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि "जे नाणं दंसण नाणं नाणेण विना नाहुंति चरण गुणा" इसलिये ज्ञान विना चारित्र होता ही नहीं। इसलिये भव्यजीवों को क्रिया का आडम्बर देखकर उन ठगों का संग न करना चाहिये क्योंकि यह वाह्य करणी रूप अभव्य जीवको आवे इसलिये वाह्य करणी ही को देखकर राजी नहीं होना। क्योंकि आत्मस्वरूप जाने विना सामायक प्रातिक्रमण पोसा आदिक सर्व पुण्यरूप आश्रव हैं सम्वर नहीं ऐसा श्री भगवतीजी सूत्र में कहा है कि "आयाखलु सामाइयं" इस अलावे से जान लेना। क्योंकि जीवस्वरूप जाने विना तप संयम पुण्य प्रकृति देवता होने का कारण है। यथोक्तँ "पुव्वतवेणं पुव्वसयमेणं देवलोए उववज्जति ने. चेवणं आपत्ता भाववत्तव्वयाए" यह अलावा श्री भगवतीजी में कहा है। इसलिये हे भोले भाई! श्रद्धा पूर्वक ज्ञान संयुक्त जो क्रिया करनेवाले हैं वेही शुद्ध चारित्र श्रीवीतराग की आज्ञा के शुद्ध परूपक हैं इसलिये केवल क्रिया का आडम्बर होने से गुरुपना कदापि न होगा। और भी सुनो कि जो क्रिया आदिक को बिलकुल उठाय कर न्याय व्याकरण कोष काव्य आदि पढ़ करके जो कहते हैं कि हम शुद्ध परूपना करते हैं क्योंकि हमारे को अक्षर का ज्ञान है; अथवा जो आचार और ज्ञानहीन हैं इन सब के वास्ते श्रीदेवचन्द्रजी कृत आगमसार में लिखा है उसी में से किंचित लिखता हूं। "मात्रगच्छ लज्जा करके सिद्धान्त भणे वांचे है व्रत पचखाण करें है वे भी द्रव्य निक्षेपामा छे" ऐसा श्री अनुयोगद्वार में कहा है कि "इमे समण गुण मुक्क योगी छकाय निरणुकंपा। हया इव उद्दामा। गया इव निरंकुशा। घट्टा मट्टा मट्टा तुप्पोट्ठा। पंडुरपा उरणा जिणाणं ५ आणाये सछन्दा। विहरिऊण उभओ

तो ठीक। ऐसी उनकी बातें सुनकर वे लोग अपने पिता के पास आयकर अपनी स्त्रियों की तरफ से हाथ जोड़कर अर्ज करने लगे और सर्व वृत्तान्त सुना दिया। तब वह साहूकार सुनकर उसीवक्त अपनी स्त्री को और उन चारों पुत्रों और उनकी स्त्रियों को लेकर परदेश को चलादिया और चलते२ एक नगर के पास जंगल में पहुंचे। उस जंगल में झाड़ी अथवा मूंज आदिक बहुत थीं उसको देखकर वह साहूकार विचारने लगा कि अपने पास में रुपया पैसा तो है नहीं जो शहर में जायकर खानापीना करें इसलिये इस जँगल में ठहरकर दो चार लकड़ियों की भारियां बिकवाय कर उसका आटा दाल लायकर खापीके चलेंगे। ऐसा विचार कर एक पानी की बावड़ी के पास एक बड़के दरख्त के नीचे ठहर गया और पुत्रादिकों से सर्व काम को कहनेलगा कि दो जने तो लकड़ियों की भारी बांधके बेचआओ और उसका आटा दाल लावो, और किसी से कहा कि तुम मूँज काटलाओ और किसीसे कहा कि इसको कूटो और किसी से कहा कि चौका बर्तन करो और किसी को पानी के वास्ते इसरीति से सर्व को जुदा२ हुक्म दिया तब बेटा और वहू आदि वचन सुनतेही अपने२ काम को करने लगे। उस वक्त में उनकी एकता अर्थात् सुमति को देखकर उस जगह जो देवता रहताथा सो प्रसन्न होकर फिर भी उन की विशेष परीक्षा करने के वास्ते मनुष्य का रूप धरकर उस साहूकार के पास आया। उस वक्त में वह साहूकार जेवड़ी बट रहा था सो उसने आयकर कहा कि तू क्यों जेवड़ी बट रहा है और क्यों इतना उजाड़ बिगाड़कर रहा है? इस वचन को सुनकर उस के पुत्रादि सब उस पुरुष की तरफ झाँकने लगे और दिल में विचारते हुए कि जो पिता आज्ञा दे तो इस को पकड़कर सीधा करदें। इतने में

वह साहूकार कहने लगा कि तुझे दीखता नहीं कि हम तेरे को बांधने के वास्ते बटरहे हैं। ऐसा उस को कहकर पुत्रादि को इशारा किया कि इस को पकड़कर बाँधो। उन पुत्रादिने इस वचन को सुनतेही अपने २ काम को छोड़कर चारों तरफ से उस को पकड़लिया। इस एकता को देखकर वह देवता प्रसन्न होकर कहने लगा कि मैं तुम्हारी एकता को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और तुम्हारे लिये मैं धन देता हूं सो तुम पूर्व की तरह फिर अपने नगर में जायकर अपना जैसा वाणिज्य व्यापार करते थे वैसाही करो और सुख पूर्वक रहो। ऐसा कहकर जो धन उस दरख्त के नीचे था सो निकालकर देदिया और कहा कि किसी को न कहना इतना कहकर वह देवता चला गया और साहूकार भी अपने नगर में आवसा और व्यापार करने लगा। सो उस साहूकारने तो किसी से जिक्र नहीं किया परन्तु उस की स्त्रीने जो कि पड़ोस में उसी के माफिक एक साहूकार था उसकी स्त्री से सब हाल कहदिया क्योंकि स्त्री के पेट में वात नहीं रहती है सो उसने अपनी पड़ोसन से जैसा हाल था वैसा सब कहदिया। उस स्त्री ने अपने पति से कहा उसने सुनकर धन के लोभ से जो कुछ थोड़ा बहुत धन था सोतो लुटादिया और उसी तरह दुःखी होकर अपनी स्त्री और बेटे और उन की बहुओं को लेकर उसी जगह जा पहुँचा और जैसे पेश्तर साहूकार अपने पुत्रों और उन की स्त्रियों पर हुक्म चलाता था वैसाही वहभी हुक्म चलाने लगा लेकिन उसके बेटा और बहुओं ने उसका हुक्म न माना बल्कि उल्टा उसको धमकाने लगे कि तू हम को ऐसे२ काम कराने को लाया है कि जो पामर लोग करते हैं यह काम हम से नहीं होता तेरे से बने सो तू कर। तब वह विचारा आपही उठकर मूँज काटकर लाया और सब काम करके रस्सी ब-

टने लगा उस वक्त वह देवता उनके हाल को देखकर दिल में कुपित होकर उसके पास आया। और कहने लगा कि तू मुफ्त की मूंज काट-कर जेवड़ी बटता है सो इस का क्या करेगा उस वक्त वह शख्स बोला कि मैं जेवड़ी तेरे बांधने के वास्ते बटता हूं। इतना वचन सुन-कर उस देवता ने गुस्सा होकर उस के चार थप्पड़ मारे और क-हने लगा कि रे दुष्ट! पहिले तू अपने घर कों को तो बाँध पीछे मुझे बाँधियो क्योंकि देख तेरी स्त्री और पुत्र और पुत्रों की बहू तेरे वचन में न बंधी तो तू मुझ को क्या बाँधेगा? इस लिये तुम लोग जल्दी यहाँ से चले जाओ नहीं तो मैं सब को मार डालूँगा ऐसा कहकर अपना भयँकर रूप दिखाया, उससे डरकर वे लोग सब वहाँ से भागगये और अपने नगर में चले आये। फिर वे पहिले जो धनादिक था उसे खोयकर महादुःखको प्राप्त हुये। इसदृष्टान्त का मतलब तो खुलासा है परन्तु कि-ञ्चित भावार्थ कहता हूँ कि जहाँ सुमति के ० पाँच सात आदमी मि-लकर जो एक की आज्ञा में रहें तो पहिले साहूकार की तरह सुख की प्राप्ति हो और जो अपने २ हुक्म चलावें और किसी को बड़ा न मानें तो पिछले साहूकार की तरह दुःख को प्राप्त हों। इसी रीति से इस जैनमत में भी यती वा संवेगियों में गच्छादिक के भेद, अथवा बाईसटोला ढूंढि-यों में टोला आदिकों के भेद, तेरह पन्थी दिगम्बरी आदि ऐसे२ जुदे२ भेद होने से कोई किसी को नहीं मानते और अपना२ हुक्म चलाते हैं बल्कि गुरु चेलाभी आपस में मान बड़ाई ईर्षा अपनी २ खैंचातान क-रके केवल रागद्वेष पक्षपात को बढ़ाते हैं। कदाचित इस में कोई आत्मार्थी भी आवेतो उसकी भी कुछ कार्यसिद्धि नहीं हो केवल राग-द्वेष में ही लिपटजाय अस्तु प्रसंगागत हमको इतना कहना पड़ा॥

**शंका**—इस तुम्हारे कहने से तो वर्त्तमान काल में साधु साध्वी आत्मार्थी कोई नहीं दीखता है और भगवान का वचन तो यह है कि साधु साध्वी पँचम आरेके छेड़ले आर तक रहेंगे ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! हमारातोऐसाकहनानहींहैकि वर्त्तमान कालमें कोईसाधुसाध्वीनहींहै किन्तु आत्मार्थीतोथोड़ेहीहोंगे। उनमेंभी कोईएकदो मेरेदेखनेमेंभीगरीबगुरबाआये। परन्तु उनपुरुषोंकोआहारादि से अनेकतरहकेदुःखमेंदेखा और उनसेसुनाभीकि भाईइसजैनमतमेंऐसा कदाग्रहफैलरहाहैकि सिवायरागद्वेषपक्षपातदृष्टिरागके आत्मार्थियोंकोआत्माकाअर्थअर्थात्चारित्रपालनाकठिनहोगया। लाचारहोकरजैसाकुछबनताहैतैसापालतेहैं ऐसाउनकीजबानसे सुननेमेंआया और मेरेभीइसबात काअनुभवबैठाहुआहैकि ३३कीसालमें मैंनेभीइसलिंगकोअंगीकाराकिया। सो दो वर्ष तक तो मेरे सँग कम रहा परन्तु ३५ की साल से सिवाय जैनियों के औरों का सँग कदापि किंचित्मात्र हुआहोगा जिसमें तमाम मारवाड़ और ढूंढाड़, आगरा, मालवा, ग्वालियर आदि देशों में फिरकर देखा तो पक्षपात रागद्वेष कदाग्रहही देखा शुद्धमार्ग की प्रवृत्तितो कहीं किसी गांवड़ा में देखी हो तो न कहसकें सो मैंभी अपना घर छोड़कर आया हूँ मेरा वृत्तान्त तो "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" में लिखचुका हूँ। लेकिन जिस इच्छा से घर छोड़ाथा सो मेरा काम न हुआ और मुफ्तमें मांगकर टुकड़ा खाया, अपनेको उल्टा रागद्वेष में फंसाया, घर छोड़ा और पूरा चारित्र हाथ न आया। इस बातका जो मुझको खेदहै सो मेरी आत्मा जानती है या ज्ञानी जानता है। कदाचित् कोई भोला जीव ऐसा सन्देह करे कि अभीके कालमें पंच महाव्रत पालना बड़ा कठिन है तो हम कहतेहैं कि पंच महाव्रत पालना तो कठिन नहीं है

परन्तु पक्षपात रागद्वेष से कठिन होगया। क्योंकि देखो जो किंचित् वैराग सेभी चारित्र लेतेहैं उनको प्राणातिपात अर्थात् जीवहननेका कोई ऐसा काम नहीं पड़ता, और झूठ बोलनेकाभी कोई कारण नहीं दीखता। और अदत्ता अर्थात् चोरी करनाभी नहीं होसक्ता क्योंकि चोरी वही करताहै जिसको किसी तरह की चाहना होतीहै। और मैथुन अर्थात् स्त्री सेवनकी भी इच्छा नहीं होतीहै क्योंकि किंचित् वैराग से अपना घर छोड़ा है। और परिग्रह रखनेका भी कोई काम नहीं क्योंकि आहार वस्त्रके सिवाय और किसीकी साधुको चाह नहीं। सो आहारवस्त्र आदि तोगृहस्थीलोग आदरपूर्वक देतेहैं। बल्कि पुस्तकपन्ना आदिकभी बहुत मिलते हैं क्योंकि श्रीसंघका घर बड़ाहै। इसलिये पँच महाव्रत पालना उनको, जिन्होंने वैरागसे घर छोड़ाहै, कठिन नहीं। लेकिन पक्षपात रागद्वेषने अथवा दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालों ने गृहस्थियों में दृष्टिराग करके कदाग्रह फैलादिया। इससे पंच महाव्रत पालना कठिन होगया। इसलिये मेरा यह कहना नहीं कि साधु साध्वी श्रावकश्राविका इस कालमें नहींहैं। हां अलबत्ता श्रीबूटेरायजी तो कहतेथे और मुंहपत्ती की चर्चा में लिखा भी है कि मेरे देखने में वा सुनने में भी नहीं आया कि जैनधर्मी किस देश में हैं। सो श्रीबूटेरायजी तो साधु साध्वी श्रावक श्राविका तो अलग रहें जिनधर्म कोही नहीं मानते हैं। बल्कि शायद इसी आशय से आत्मारामजीने भी लिखा है कि हम इस कालके जैनमातियों को बहुत नालायक समझते हैं। सो हम बूटेरायजीकी "मुंहपत्तीकी चर्चा" में से पाठ लिखते हैं—"इमजानीने कोई आत्मार्थीपुरुष मौनकरीने रह्या होवेगा तो ज्ञानीजाने परन्तु प्रत्यक्ष मेरे देखनेमें तो आयानहीं, कोई होवेगातो ज्ञानीजाने। देखनेमें तो

घने मती आवे हैं तत्वतो केवली जाने जिम ज्ञानी कहे ते प्रमाण । फिर मैंने विचरकर मती तो मैंने घने देखे पिण कोई मती मेरे बिचार में आमदा नथी तथा और क्षेत्रमें सुनाभी नथी जो फलाने देशमें जैन धर्मी विचरें हैं केती दूर किस क्षेत्र में हैं" इसरीति से "मुंहपत्तीकी चर्चा" में लिखा है जिसकी खुशी होय सो देखलो। अब इस झगड़ेको छोड़कर श्रीवीतरागकी शुद्ध देशना देनेवाले पुरुपका वर्णन करते हैं कि किसरीति का वैराग्यलेनेवाला और कितनी बातोंका अथवा शास्त्रोंका जानकार होय सो वीतरागकी यथावत् देशनादे उसका किंचित् स्वरूप लिखते हैं। प्रथम तो उस पुरुपके १२ प्रकृतिका क्षय हो क्योंकि अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी इन तीन चौकड़ियोंके क्षय अथवा उपशम होनेसे शुद्ध चारित्रकी प्राप्ति होती है। फिर वह पुरुप दान्त अर्थात् इंद्रियों का दमन करनेवाला हो और निर्लोभी हो अर्थात् ऐसा न करे कि जैसे वर्त्तमान काल में पजूसनोंमें कल्पसूत्रादिकों पर रुपया बुलवातेहैं किन्तु व्याख्यान सुननेवालेसे आहारवस्त्रादिककीभी इच्छा न रक्खे इस कदर निर्लोभी हो। दूसरा निर्भय अर्थात् व्याख्यान देनेमें किसी तरहका किसीसे भय न करे, क्योंकि भयसेभी शुद्ध परूपना नहीं होतीहै इसलिये निर्भय होय। और वचनभी जिसका मुंहसे स्पष्ट उच्चारण हो क्योंकि उसके मुंहसे शुद्ध अर्थात् स्पष्ट वचन न निकले तो श्रोताकी समझमें नहीं आवे इसलिये स्पष्ट उच्चारण करनेवाला होय। और लिंगादि सोलहबातोंका जानकार होय क्योंकि "लिंगतियं वयतियं" इत्यादि शास्त्रोंमें कहाहै। तीन लिंग अर्थात् पुरुपलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग इनको जाने। तीन वचन अर्थात एकवचन, द्विवचन, बहुवचन इनको जाने। तीन काल अर्थात् भूत, भविष्यत, और वर्त्तमान, ऐसेही तीनक्रिया को जाने कि यह किस

यवाला चारणभावना अध्ययन भणे । सोलहवर्षनापर्यायवाला वेदनीश-तक अध्ययन भणे। सत्रहवर्षना पर्यायवाला आसीविष अध्ययन भणे । अठारह वर्षना पर्यायवाला दृष्टिविषभावना नामा अध्ययन भणे । ओग-णीसवर्षना पर्यायवाला सर्व सूत्रनावादीहोय इति व्यवहारदशमोद्देशके ॥ इस रीतिसे गुरुके पास रहकर शास्त्रोक्त रीति से जिन्होंने शास्त्र बांचा है वेहीपुरुष श्रीबीतराग सर्वज्ञदेवकी यथावत् वाणीका प्रकाश करेंगे नतु अन्यरीति से ॥

**शंका**–आपने सूत्रोंका प्रमाण दिया सोतो ठीकहै परन्तु वर्त्तमान कालमें कितनेही विद्वान अर्थात् पंडितलोग ऐसा कहतेहैं कि जिसको सूत्रबांचनेका बोधहोय वह अवश्य बांचे क्योंकि दोतीन वर्षकी दीक्षा लेनेवालेको बोधहोय तो अवश्य शास्त्र बांचे उसमें कुछ हर्ज नहीं है ॥

**समाधान**–हेभोलेभाई ! दोतीन वर्षकी दीक्षा लियेहुएको भी बो-ध होजाय तो वह हरेक सूत्र बांचे ऐसा कहनेवाले पंडित नहीं किन्तु जिनाज्ञाके विराधकहैं । हांअलबत्ता ऐसेतो पंडित होंगे कि (प) नाम पापी (ड) नाम डाकी और (त) नाम तस्कर अर्थात् चोर । अब यहां कोई ऐसा कहै कि यह तो हंसीका अर्थ है सो नहीं किन्तु इन शब्दों का भावार्थ दिखाते हैं । वह पापी किस तरह हुआ कि श्रीभगवतने तो कहा कि इतने वर्षका दीक्षित तो फलाने सूत्रको पढ़े और वह पुरुष क-हताहै कि २तथा३ वर्षकी दीक्षावालेको बोध हो तो हरेक सूत्रको बांचे यह उसका कहना उत्सूत्रहै । इसीवास्ते श्रीआनंदघनजी महाराज चौ-दवें श्रीअनन्तनाथजीके स्तवनमें कहतेहैं कि "पापनहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिसो ।" इसीरीतिसे डाकी कहतां बालकको खानेवाला है इस जगह कोई ऐसा कहै कि पंडित ने किस बालकको खाया तो

हम कहते हैं कि जब उसने श्रीभगवत-आज्ञा के विरुद्ध अर्थात् सूत्रविरुद्ध कहा तो उसने चारित्र अर्थात् संजमरूपी बालकको खाया इसलिये वह डाकीही है। और तस्कर चोरको कहतेहैं। ऐसा कहनेवाला जो पंडितहै सो चोरभी है क्योंकि एक तो जिनाज्ञा का चोर दूसरा गुरु—आज्ञाका चोर इसलिये इन दोनों के अर्थ को चुरानेसे ऐसा पंडित चोरही ठहरा। देखो संसारी चोरी करनेवाले हैं उनको तो शास्त्रों में इतना विरुद्ध न कहा परन्तु जो जिनाज्ञा अर्थात् सूत्रसे विरुद्ध कहनेवालेहैं उनको शास्त्रोंमें अनन्तसंसारी कहाहै क्योंकि वे निश्चयमें मृषावाद अर्थात् झूठ बोलते हैं। सो निश्चयसे झूंठबोलनेवाला जो आलोयणा ले तौभी उसकी आलोयणा शास्त्रसंयुक्त न होय। क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा कहाहै कि जो चौथा व्रत भांगदेय वह आलोयण लेकर शुद्ध होजाय, परन्तु मृषावाद अर्थात् झूंठबोलनेवाला शुद्ध न होय। इसलिये लोग पंडितका जो अर्थ जानतेहैं वैसातो नहींहै किन्तु हमने लिखाहै वैसा है। वह पंडित भोलेजीवों को बहकायकर संसारमें रुलानेवाला होगा नतु जिनाज्ञा संयुक्त पंडित। औरभी सुनो कि जिन-शास्त्रका बोध होना तो गुरुकुलवासकेही आधीनहै और कदाचित् कोई ऐसा समझे कि दोचार शास्त्र गुरुसे बांचकर फिर हम सर्वशास्त्रोंको लगायलें तो यह समझभी उनकी ठीक नहीं है। क्योंकि जिन-शास्त्रका रहस्य अपनी बुद्धि और शास्त्रके बांचनेसेही नहीं किन्तु गुरुसेही प्राप्त होगा ऐसा मेरा अनुभव है। यहां जिन पुरुषों का ८४ चौबीसी नाम चलेगा ऐसे श्रीस्थूलभद्रजी महाराजका थोड़ासा वृत्तान्त लिखते हैं। श्रीस्थूलभद्रजी महाराज ने श्रीसंभूतविजय स्वामीजी के पासमें दीक्षाली और कुछ दिनके पीछे श्रीभद्रबाहु स्वामीजीके पासमें गये और उस जगह विद्याध्ययन किया और

उनहीके साथ विचरतेहुए एक समय पाडलीपुर नगरमें आये और गुरुकी आज्ञा लेकर पिछली विद्या अध्ययन करनेके वास्ते एकान्तमें पहाड़की गुफा आदिक पर गये। उनके जानेके पीछे उनकी जो बहनने दीक्षा लीथी वह गुरुके पास आकर वन्दना करके कहनेलगी कि महाराज! मेरे संसारपनेके भाई स्थूलभद्रजी आपके पास विद्या पढ़तेथे सो कहां हैं उनको वन्दना करनेकी मेरी इच्छा है। तब गुरु महाराजजी कहने लगे कि वह अपनी पिछली विद्या अध्ययन करने के वास्ते फलानी जगह गयाहै जो तुम्हारी इच्छा होतो तुम उस जगह जाओ। गुरु महाराज की इतनी आज्ञा पायकर वह साध्वी उस जगहको जाती भई। उस वक्त श्रीस्थूलभद्रजी महाराज अपनी बहन साध्वीको आती हुई देखकर मोदमें आयकर विद्याका चमत्कार अपनी बहन साध्वीको दिखानेके वास्ते सिंहका रूप धारणकर बैठगये। जब वह साध्वी पास पंहुची तो अपने भाई स्थूलभद्रजी महाराज को तो न देखा परन्तु सिंहको बैठाहुआ देखा। तब वह डरी और कहने लगीकि मेरे भाईको सिंह खागया ऐसा विचारकर चित्तमें उदास हो गुरुके पास आई और सब वृन्तान्त कहा। तब गुरुने उपयोग देकर देखा और साध्वीसे कहा कि नहीं वह तेरा भाईही है, उसने विद्या से सिंहका रूप करलिया है सो अब तू जा वह तुझको मिलेगा। और दिलमें बिचारा कि उसमें विद्या न पची वह अयोग्यहै। एकतो ऐसा स्थूलभद्रजी का आख्यान है। दूसरा किसी २ पुस्तकमें दूसरी तरहसे भी आख्यान लिखाहै कि एकदफा श्रीस्थूलभद्रजी महाराज संसारीपनेके मित्र एकब्राह्मण के घरमें गये और पूछा कि विप्र कहां? उस वक्तमें उस ब्राह्मणकी स्त्री कहनेलगी कि आप का मित्र धन कमानेके वास्ते परदेश गया है। इतना वचन सुन

स्थूलभद्रजी महाराज कहनेलगे कि धनतो थारे इस जगह गड़ा है फिर वह परदेश क्यों गयाहै ? इतना वचन कहकर चले आये और पीछेसे जब वह ब्राह्मण परदेश से आया तब उसकी स्त्रीने उसे कहा कि आपके मित्र इस जगह धन बतागयेथे । ऐसा सुन उस ब्राह्मणने धन खोदा और अपने काममें लाया । इन दोनों बातोंको सुनकर श्रीभद्रबाहुस्वामीजीने श्रीस्थूलभद्रजीको अयोग्य जानकर पेश्तर जो दश पूर्व पढ़ायेथे सो तो पढ़ाये और फिर पढ़ाना बन्द करदिया । परन्तु फिर श्रीसंघके आग्रहसे चार पूर्व मूल पढ़ाये परन्तु अर्थ न बताया । इसी कारणसे श्रीस्थूलभद्रजी तक मूल तो चौदहही पूर्व रहे परन्तु अर्थ तो दसही पूर्व तक का रहा । फिर श्रीस्थूलभद्रजी महाराजके पीछे चार पूर्व बिलकुल विच्छेद होगये, केवल दश पूर्व की विद्या पीछे रहगई । इस लिखनेसे मेरा इतनाही प्रयोजनहै कि श्रीस्थूलभद्रजी महाराज जैसे महत् पुरुष और बुद्धिमानथे वैसा इस वर्त्तमान कालमें होना कठिनहै । सो श्रीभद्रबाहु स्वामी जैसे चौदहपूर्वधारी श्रुतकेवलीके पढ़ायेहुए श्रीस्थूलभद्रजी महाराज थे उनको भी दश पूर्वका जोर होतेहुए गुरुके बिना चार पूर्व का अर्थ प्राप्त न हुआ अर्थात् जिनसे चार पूर्व न लगे तो अभी जो लोग कहते हैं कि जिसको बोध होय वह कोई सूत्र बाँचे कुछ हर्ज नहीं उनका कहना और हमारा अनुभवका लिखना बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये कि जिनआगमका रहस्य बुद्धिसेही प्राप्त होता तो दश पूर्व गुरुगमसे पढ़ेहुए श्रीस्थूलभद्रजी महाराज चार पूर्वका अर्थ क्यों नहीं लगायलेते । इसलिये गुरुके बिना जिनआगमका रहस्य हर्गिज प्राप्त न होगा । इसवास्ते हमारा यह कहनाहै कि जिनराजकी आज्ञा शास्त्रसंयुक्त श्रद्धा अर्थात् विश्वास करने से ही कल्याणका हेतु है नतु स्वमति कल्पनासे जिनाज्ञा विरुद्ध कह-

ना ठीक है। इसलिये श्रद्धा रखकर जिनाज्ञा में चलनाही श्रेष्ठ है। आज्ञा के बिना संजमतपक्रियाकष्टआदि सब क्षारपर लीपना अर्थात् वृथा है। अब इस जगह नवीन प्राचीन आचार्योंका परिचयभी देते हैं। "एगोसाहु एगायसाहुणी सवउविसढिया आणाजुत्तोसंघो सेसो पुणअट्ठिसंघाओ" ऐसा सबोदसूत्रीमें लिखाहै कि एक साधु एक साध्वी एक श्रावक एक श्राविका ये चारों जो भगवत-आज्ञासंयुक्त हों तो इनहींको संघ कहना। (सेसो) क० सैंकड़ों वा हजारों साधुसाध्वी श्रावकश्राविका भगवानकी आज्ञामें नहीं तो हाड़ोंका समूहहै अथवा अट्ठि क० हाड़ोंसे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो तो उन भगवान-आज्ञा-रहित साधुसाध्वी श्रावकश्राविका से कार्यसिद्धि हो। इसलिये श्रीआनन्दघनजी महाराजभी चौदहवें श्रीअनन्तनाथ भगवानके स्तवनकी पांचवीं गाथामें कहते हैं "देवगुरुधर्मनी शुद्ध कहो केमरहे ॥ केमरहे शुद्ध श्रद्धान आणो ॥ शुद्ध श्रद्धानविण सर्व किरिया करी ॥ छारपर लीपनो तेहजाणो।" ऐसाही श्रीदेवचन्द्रजी कृत "विशन्तिविहरमानजिनस्तवन" के बारवें श्रीचन्द्राननजिनकेस्तवन की पांचवीं गाथामें कहते हैं कि "आणासाध्यबिनाक्रियारे, लोकेंमान्योरे धर्म ॥ दंसनज्ञानचरित्रनोंरे, मूलनजाणयोमर्मरे" ॥ ५ ॥ औरभी श्रीयश विजयजी महाराज कहतेहैं "भद्रबाहुगुरुबन्दनवचनए, आवश्यकमांलहिये ॥ आणाशुद्धमहाजणजानी, तेहनीसंगरहियेरे ॥ १० ॥" ऐसा श्री मन्दरस्वामीके स्तवनकी १०वीं ढाल साढेतीनसौ गाथाके स्तवनमें लिखा है। औरभी देखोकि श्रीअजितनाथजीके स्तवनमें कहाहै कि "श्रद्धाविन चरण ज्ञान, क्रियासबकरतअजान, जैननामकोधराय कहो कैसे कर तारे॥" इत्यादि अनेक जगह प्राचीन आचार्य आत्मार्थी कहगये हैं इसलिये श्रद्धापूर्वक जिनाज्ञा पालना ठीक है ॥

**शंका**— आपने ये शास्त्रोक्त बातें लिखीं सो तो अभीके वक्तमें इस रीति से जोग वहकर गुरुसेही सर्वशास्त्रवांचना नहीं दीखताहै। हां अलबत्ता कितनेही पुरुष४५ आगमका जोगतो बहतेहैं परन्तु दीक्षाके इतनेही वर्ष पीछे फलाना ग्रन्थ बांचना सो तो नहीं। और कितनेही पुरुष एक महीनाकाही अर्थात मांडलीआवश्यक और दशवैकालकका जोगवहकर सर्वसूत्र बांचनेलगतेहैं और कितनेही जोगभी नहीं वहते और सर्व सूत्र बांचतेहैं। तो ऊपरलिखी रीतिसे भगवत-आज्ञा नहीं दीखतीहै ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! मैंतो इसबातको निश्चय नहीं कहसकूं कि वे भगवत्-आज्ञामेंनहीं, इसबातको तो ज्ञानीही कहे। मैंनेतो पक्षपात रागद्वेष छोड़कर शास्त्रोंमें लिखीहुई विधिका वर्णन किया। परन्तु ऊपर लिखी विधि नहीं होनेसे इतना अनुमानसिद्धहै कि शास्त्रविधिविनाही पक्षपात थापउथाप समाचारीभेद अपनी २ बुद्धिपंडिताईको जताने, और अपनी २ बुद्धिसे शास्त्रोंके भिन्न २ अर्थको थापने, दूसरेके अर्थको उथापने और अपना स्वार्थ अथवा अपना वचन वा समाचारीकी सिद्धिके वास्ते आगम, प्रकरण, स्तवनासिज्झायआदि कुछभी हो उसका प्रमाण देकर उसको अँगीकार करते हैं। परन्तु अपने स्वार्थ वा वचन समाचारी में फर्क आवेतो उसी आगम प्रकरण वा स्तवनसिज्झायको नहीं मानते। इसीलिये जो हमने शास्त्रोंकी विधि लिखीहै उसके न होनेसे अथवा गुरुकुलवास विनाही इस जैननधर्ममें कलह कदाग्रह होरहाहै। इसीलिये श्रीयशविजयजी महाराजने सवासौ गाथाका श्रीमन्दिर स्वामीका स्तवन बनायाहै उसकी पहली ढालकी अर्थसमेत आठगाथा लिखतेहैं गाथा का अर्थ गुजरातीभाषामें था सो उसीके अनुसार खड़ीबोली में लिखतेहैं गाथा—"कुगुरुनी वासना पाशमां ॥ हरिणपरे जे पड्यालोकरे ॥ तेहने

शरण तुजविणनहीं ॥ टलवले बापडा फोकरे ॥ २ ॥ **अर्थ**– (कुगुरुनी वासनापाशमाँ ) क० खोटे गुरुकी उपदेशरूपी वासना अर्थात् खोटी देशनारूपीफांस अर्थात् जालमें पड़ेहैं कौनकि लोक ( हरिणपरे जे पड्यालोकरे ) क० जैसे व्याध अर्थात् शिकारी हरिण अर्थात् मृगादिकों को फंसायकर पकड़ते हैं उसी रीतिसे कुगुरुकी देशना सुनकर लोक अर्थात् गृहस्थी फंसेहैं सो दृष्टिराग मोहमें अमूझेहुए रहतेहैं ( तेहने शरण तुजविणनहीं ) क० सो हे प्रभु ! तेरी सत्यदेशना अर्थात् सत्यउपदेशबिना उन दृष्टिरागी लोकोंको शरण नहीं क्योंकि जबतक तेरा सत्यउपदेश न परिणमेगा तबतक उनका फांसी अर्थात् जालसे छूटना न होगा इसलिये तेरी शरणके बिना वे बिचारे क्याकरें ( टलवले बापडा फोकरे ) क० सो हेप्रभु ! वे दृष्टिरागी गृहस्थी बिचारे कष्टक्रिया आदिक करेंहैं सो फोगट अर्थात् मुफ्तमें कायाक्लेश कररहेहैं सो हेप्रभु ! फांस नाम इन कुगुरुकी जाल छूटे उन्हीं पुरुषोंकी क्रिया तेरी शरणकी जाननी **गाथा**— ज्ञानदर्शनचरणगुणबिना ॥ जोकरावे कुलाचाररे ॥ लूटतेणे जनदेखतां ॥ किहांकरे लोकपुकाररे ॥ ३ ॥ **अर्थ**– ( ज्ञानदर्शनचरणगुणबिना ) क० ज्ञानदर्शनचारित्रकरकेरहित जोकोई कुगुरु गृहस्थियोंसे, करातेहैंक्या ( जेकरावेकुलाचाररे ) क० जोकोई कुलका आचार बतायकर क्रिया करातेहैं सो उस क्रियासे क्रियाकरानेवाले क्या करातेहैं कि जिस रीतिसे चले उस रीतिसे चलो, परन्तु शुद्धअशुद्धका विचार न करे क्योंकि देखो ( लूटतेणे जन देखतां किहांकरे लोकपुकाररे) क० वे गुरु लोग उन गृहस्थियों अर्थात् भोले मनुष्योंको देखतेहुए लूटतेहैं कि जैसे सुनार लोगोंके सामने सोनेको चुराताहै इसरीतिसे वे कुगुरु भोले मनुष्योंको लूटरहे हैं । खोटी मनोकल्पना करके स्वार्थसिद्धिके वास्ते सूत्रों

का नामलेकर भोले जीवोंको लूटतेहुए इस तरहका अन्याय करतेहैं सो वे भोले जीव कहां जायकर पुकार करें क्योंकि हे प्रभु ! आपतो अलग अर्थात् महाविदेह क्षेत्रमें विराजे हो। सो हे प्रभु ! आपके बिना इन भोले जीवोंकी पुकार कौन सुने ? इस कुलाचार पर श्रीचिदानन्दजी अपरनाम कपूरचन्दजीभी कहतेहैं— दोहा— मूरख कुल-आचारकुं, जाणत धरम सदीव ॥ वस्तुस्वभाव धरमसुधि, कहत अनुभवीजीव ॥ ऐसेही कुमरविजय जी जिन्होंने "नवतत्व प्रश्नोत्तर" बनायाहै उसमें कहाहै—दोहा—भेषधारी को गुरु कहै, धनवन्ताको देव ॥ कुलाचारको धर्म्म कहै, यह मूरखकी टेव ॥ गाथा— जेह नवि भवतरया निरगुणी ॥ तारशे केणीपरे तेहरे ॥ एमअजाणया पड़े फन्दमां पापबंधे रह्याजेहरे ॥ ४ ॥ अर्थ— ( जेह नवि भवतरया तारसे केणीपरे तेहरे ) क० जो कपटक्रिया करता है और भाव धर्म्म जिसके नहींहै तो वह पुरुष आपही निर्गुणी अर्थात् गुण करके रहितहै तो दूसरोंको क्योंकर गुणी करसके क्योंकि जो आप दरिद्री है वह कदापि दूसरों को लक्षपति नहीं बना सक्ता । इसीरीतिसे जो भेष लेकर भेषधारी धूर्त्तता अर्थात् कपट से वाह्यक्रिया करतेहैं वे आत्मसत्तारूप धनके दरिद्रीहैं क्योंकि जिनाज्ञासंयुक्त आत्मधर्मको नहीं जानतेहैं इसलिये वे लोग किसीको नहीं तारसक्तेहैं तो वे क्याकरें ( एम अजाणया पडे फन्दमा ॥ पापबंधेरह्या जेहरे ) क०वे कुगुरु अजाण पुरुषोंको दृष्टिरागमें फंसायकर अपने फन्दमें गेरतेहैं, सो वे भोले जीव फन्दमें फंसेहुए केवल पापसमुदायमें पड़ेहैं उन पुरुषोंका आत्मवीर्य हुल्लास होयनहीं किन्तु कदाग्रहही करेंहैं ॥ गाथा— कामकुंभादिक अधिकनुं ॥ धर्मनुं को नवि मूलरे ॥ दोकड़े कुगुरु ते दाखवे ॥ शुंथयुं एह जगसूलरे ॥ ५ ॥ अर्थ—( कामकुंभादिकअधिकनुं ॥ धर्म्मनुंकोनविमूलरे ) क० कामकलस

आदि शब्दसे चिन्तामणिरत्न कल्पवृक्ष इनसे तो संसारी मनोवांछित फल निकलताहै परन्तु मोक्षफल देनेमें इनकी सामर्थ नहीं और धर्मसे तो चिन्तामणिरत्न आदि मिलतेहैं और मोक्षभी मिलतीहै। इसलिये कल्प वृक्ष आदिसे अधिक अमोल वस्तु धर्म्महै। देखो श्रीआनन्दघनजी महाराजकी कीहुई बहोत्तरीमें ऐसा कहाहै—जोहरी मोलकरे लालनका मेरा लाल अमोला॥ जाकेपटतर कोईनहीं, उसका क्यामोला॥ निसदिन जोउं तारी वाटड़ी, घरेंआवोरेढोला ॥२॥ इसलिये धर्मअमोलहै। सो ( दोकडे कुगुरु ते दाखवे ॥ शुंथयुंएहजगसूलरे ) क० दोकड़े कहतां गुजरात में एक पैसेको और काठियावाड़में दोपैसेको, सो तिस धर्म रूपी अमोल वस्तु को कुगुरु पैसोंमें बेचतेहैं अर्थात् गृहस्थियोंको कहतेहैं कि पन्ने हाथमें लो और बोली बोलो अर्थात् दो तथा चार आना इस पर बोलो। इसरीतिसे कहतेहुए लोगोंका पाप गमातेहैं और यह कहतेहैं कि जो तुम धनआदि खर्चोगेतो शुद्ध होजावोगे। ऐसा जगतके विषय सूल थयो अर्थात् अन्धेको अन्धा चलावेहै॥ **गाथा**—अर्थनीदेशना जेदीए॥ ओलवे धर्मना ग्रंथरे॥ परमपदनो प्रगट चोरथी॥ तेहथी केम वहे पंथरे ॥६॥ अर्थ—(अर्थनीदेशना जेदीए॥ओलवे धर्मनाग्रंथरे)क०अर्थ अर्थात् धनादि अथवा अच्छे२ वस्त्र पोथीपन्ना वा अच्छाआहारादिके वास्तेही देशना देते हैं और धर्म अर्थात् आत्मार्थ के जो ग्रंथ द्रव्यानुयोग अथवा दशवैकालकादि(ओलवे)क० शुद्ध परूपना न करे किन्तु चरित्र,ढाल, चौपाई और रासादि कुतूहल अथवा सभारंजन आदि करके अपना अर्थ अर्थात् आजीविका करतेहैं। जैसे पुरोहित जिजमानको लडायकर अर्थात् रिझायकर अपने अर्थको सिद्ध करतेहैं इसी रीतिसे कुगुरु कररहेहैं। ( परमपदनो प्रगट चोरथी॥ तेहथी केम वहेपंथरे ) क० ते कुगुरु परमपद क० आत्मार्थ

अर्थात् मोक्षपदके प्रगटपणे चोरहैं । अब कहो ऐसे कुगुरुओंसे मोक्षमार्ग किस रीतिसे चले किन्तु न चले ॥ गाथा— विषयरसमांगृही माचिया ॥ नाचिया कुगुरुमदपूरे ॥ धूमधामे धमाधम चली ॥ ज्ञानमारग रह्योदूररे॥७॥ अर्थ— ( विषय रसमां गृही माचिया ॥ कुगुरु मदपूरे ) क० गृहस्थी लोगोंको तो इन्द्रीआदिकोंके विषयमें अनादिसे राचाहुआ अभ्यासहै क्योंकि देखो एकेन्द्रीसे लेकर पचेन्द्रीपर्यन्त जीव इन्द्रियोंके अभ्याससेही जन्ममरण करताहै सो उस जीव अर्थात् गृहस्थीको सुगुरुका उपदेश कानमें लगा नहीं किन्तु कुगुरुका लगा । मद में परिपूर्ण ऐसे कुगुरु धनपात्र अर्थात् आहारपानी पुस्तकपन्ना धनादि खरचनेवाले दातारोंको मानादि देकर आप उत्कृष्टे बनकर ईर्षा करतेहुए । दोनों जनों को धर्म्मकी खटपटली क० धर्म्मकी इच्छातो गई परन्तु क्या चली ( घूमधामे धमाधम चली ॥ ज्ञानमारग रह्यो दूररे । ) कि उन्मार्ग चला । धूमधामक० धक्काधक्की तिस करके, धमाधमक०धीगामस्ती चली इसलिये शुद्ध क्रिया तो दूर रही और अशुद्ध क्रियाके करनेवाले आडम्बरको लियेहुए मोटाईसे आगे बढ़े केवल धींगानु क० जबर्दस्ती आपही गृहस्थियोंको प्रेरणा करके गांवमें घुसती दफै विशेष करके सन्मुख बुलातेहैं और गाजाबाजा करातेहैं और कहतेहैं कि तुमलोग विशेष करके पूजाप्रभावनादिकरो, कि जिससे धर्म्म अर्थात् जिनशासन की उन्नतिहोय । क्योंकि लोग देखेंगे कि प्रभावनादिक बटेगीतो लोग बहुत इकट्ठेहोंगे इसलिये तुम करो, धर्म्मकी शोभादीखे । अब धूम, धामे और धमाधम इन तीनों का भिन्न२ अर्थ लिखतेहैं-(धूम)क०कुमार्गका वचनहै कि जो अपना आपही यशका अर्थी होय उस जगह धर्म गया क्योंकि देखो साधुका मार्ग ऐसाहै कि किसी तरहकी उन्नतिकी इच्छा न करे सहजस्वभावेही जो किसी तर-

ह की उन्नति होय तो होजावो परन्तु उन्नति होनेमें हर्ष न लावे, किन्तु अपने स्वभावमें रमे इसलिये यहां धूम तें उन्मार्ग अर्थात् पासत्थादिकका पराक्रम जानना और (धामे )क० आडम्बरी लोगोंके दृष्टिरागी गृहस्थी जोकि उनके कहने मुजिब करनेवालेहैं उनका पराक्रम जानना तैसेही ( धमाधम ) क० उन दोनों की करणी जानना क्योंकि देखो इस श्लोकका भावार्थ यहां ठीक मिलता है "उष्ट्रकाणांविवाहेषु गानंकुर्वन्तिगर्द्दभाः परस्परंप्रशंसन्ति अहोरूपमहोध्वनिः ॥ " आगे इसी गाथाका अर्थ जो गुजराती भाषामें बहुत सुगमहै वही लिखतेहैं " वलीशरीरनी शुश्रूषाराखे, शरीरनो मेल दूरकरें, शरीरलुंच्छे, सरस आहारकरे, नवकल्पीबिहारनकरे, श्रावक श्राविकानों घणोपरिचयकरे, श्रावककेघरें भणाववाजाय, श्रावकसाथे घणीमीठासीकरे, पोतानाआत्मानो अर्थतोसाधेजनहीं, भली चन्द्रवा बंधाय तिहां रहे, रेशमीवस्त्रोपेहरे, साबूएधोयावस्त्रपेहरे, हृष्टपुष्ट शरीर राखे, वस्त्रपात्रना दूषण धरे, गीतार्थनीआज्ञा न माने, अणजाणयो मार्ग चलावे, अणजाणयो कहे, मार्गेहिडतां अर्थात् रस्तेमें चलतेहुए बातकरे, गृहस्थसाथे घणी आलापसंलापकरे इत्यादिक एवीकरणी पोते साधुपणो पोतामांहेसर्द्दहे, अनेगृहस्थनेपण साधुपणुंसद्दहावे, दर्शननीनिंदाकरे, पोतापणु बखाणे, पोतानोआडम्बरचलाववो, गृहस्थपासेपण पोतानीभक्तिप्रमुखनो आडम्बरचलाववो इत्यादिक सर्वठामें १ धूम२ धाम ३ धमाधम ए त्रणबोल जाणवा ज्ञानादिकमार्ग पुस्तकादि कहे तेतो करवाजाणवामाटे वेगलोरह्यो भूठाबोलाज घणा छै

**गाथा**—कलहकारी कदाग्रहभर्या ॥ थापताआपणाबोलरे ॥ जिन वचन अन्यथादाखवे ॥ आजतो बाजतांढोलरे ॥ ८ ॥ अर्थ—(कलह) क० क्लेशनाकरणार कदाग्रहकरी भर्याहुआ आपसमें माहोमाहीं एक

का एक अवरणवाद अर्थात् परस्पर निन्दा करतेहुए अपने २ वचन को स्थापतेहैं और दूसरेके वचन को उठातेहैं इसरीतिसे (श्रीजिनवचन)क० श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके वचन को अन्यथाकरके दिखातेहैं अर्थात् विपरीत करके दिखातेहैं क्योंकि देखो इन कुगुरुओंके लड़ाईझगड़ोंमें श्रीजिनराजके वचनकी तो आत्मार्थीको खबर पड़ेनहीं क्योंकि इनकी भिन्न२ परूपना होनेसे श्रीवीतरागके वचनमें विषम्वाद आताहै।। गाथा—केई निजदोपने गोपवा ॥ रोपवा केई मतकन्दरे॥ धर्मनीदेशना पालटे ॥ सत्य भापेनहीं मन्दरे ॥६॥ अर्थ—कितनेही अपने दोपको छिपाने के ताईं कपटक्रिया करते हैं और उस अपने दोपको छिपानेके अर्थ अपवादमार्ग दिखातेहैं कि अभी पंचमकालहै इसलिये वोसंग्रहण और मनोवचन आदिकी प्रवलता नहींहै इसीलिये पंचमकालमें साधुपणा पलेनहीं सो अपवादमार्गका नाम लेकर गृहस्थियोंके घरमें दो२ चार२ दफ़ा आहार पानीआदि लेनेको जातेहैं और खूब सरस आहारादिक करतेहैं, खूब अच्छे२ रेशमी कपड़े पहनतेहैं, शरीरको हृष्टपुष्ट करतेहैं, दिनभरमें दो२ तीन२ दफा खातेहैं इत्यादिक तरहसे अपने दृष्टिरागी श्रावकोंको छेद आदिग्रंथोंमें से अपवादमार्गको दिखाय२कर जालमें फंसाये रखतेहैं । श्रीकल्पसूत्र दशवैकालक आदि सूत्रोंसे गृहस्थीके घरमें साधुको एक वारही आहारपानीके लिये जाना कल्पेहै नाकि वार२, कदाचित् कोई कारण आपड़े तो गिलान आदिक साधुके वास्ते दूसरी दफाजावे, नहीं तो कुछ काम नहीं। कदाचित् वे ऐसा कहैंकि एक दफाके आहार करनेसे शरीर की शक्ति कम होजातीहै क्योंकि वोसंग्रहण नहींहै । तो हम कहतेहैं कि ऐसा कहनेवाले महाधूर्त्त जिनाज्ञाके विराधकहैं । क्योंकि देखो सैंकड़ों गृहस्थी अथवा अन्यमतवाले स्वामी संन्यासी वैरागी आदिक एकद-

फेही आहार करतेहैं सो उनका तो शरीर किसी रीतिसे थकता नहीं और मुझेभी अनुभव है कि एक दफ़ा आहार करनेसे शक्ति नहीं घटती किन्तु आनन्दपूर्वक धर्मध्यान अच्छी तरहसे बनताहै। इसलिये दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालेही इन्द्रियों के विषयभोगनेके वास्तेही अपवादमार्गको मुख्य थापकर भोले जीवोंको बहकातेहैं, अपने वचनरूपी मत थापनेके वास्ते सूत्रोंकी साक्षी दे२ कर अपवादमार्गको सिद्ध करतेहैं और भोले जीवोंको अपने दृष्टिरागरूपी जालमें फंसातेहैं। और कितनेहीएक प्रतिमाके नहीं माननेवाले लुंपकादि अपने मतरूप कन्दके स्थापनेके वास्ते धर्मकी जो असल देशनाहै उसको पलटकर दूसरी देशना देतेहैं। परन्तु जिससे जीवको धर्मकी प्राप्तिहो अर्थात् वह धर्ममें लगे वह देशना तो देतेनहीं इसरीतिसे (मन्द) क० मूर्खहैं सो कदापि सत्य बोलैंनहीं किन्तु झूंठही बोलैं। इसरीतिसे इस पहली ढालकी ८ गाथाका किंचित् भावार्थ लिखा। परन्तु दूसरी ढालमेंभी इसीरीतिसे कई गाथाओंमें वर्णन कियाहै सो ग्रंथ बढ़जानेके भयसे नहींलिखा। इसरीतिसे हमनेतो शास्त्रोक्त प्रमाण देकर लिखाहै सो भव्यजीव आत्मार्थी होय सो श्रीवीतरागकी आज्ञाको अंगीकार करके कल्याण करो नतु पक्षपात वा किसीकी निन्दासे यह लिखा है॥

**शंका**—अजी व्याख्यानादितो आपभी देतेहो तो आपनेभी यह सब रीति की होगी। आपकोभी तो लोग साधु कहतेहैं॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! मैंलाचारहोकर व्याख्यान देताहूं क्यों कि अभीके वक्तमें हरेककोई दीक्षालेकर पाँच प्रतिक्रमण यादकर स्तवन सिज्झाय सीखकर गृहस्थियोंके सँग बैठकर उनको प्रतिक्रमण करादेता है और चौपाई चरित्र सीखकर उनको व्याख्यान सुनादेताहै अथवा चौ-

मासी और पजूसनका व्याख्यान सुनादेताहै इसलिये मेरेभी पीछे पड़कर गृहस्थीलोग जबर्दस्ती व्याख्यान करातेहैं। तोभी अक्सरकरके दोतीन महीना चौमासेमें व्याख्यानदेताहूँ और हमेशा व्याख्यानदेनेका कमरखता हूँ इसलिये मुझसे गृहस्थीलोग नाराजभी रहते हैं और ऐसाभी कहतेहैं कि जोकोई यहां आताहै सो सब व्याख्यानदेतेहैं परन्तु येहीनहींदेते। ऐसी२ बातें सुनकरभी मेरा चित नहीं चाहताहै क्योंकि इस वक्त में जो प्रवृत्ति चलरहीहै उसकाहालतो हम पीछे लिखआये हैं और मेरेसे उस प्रवृत्ति मूजिब व्याख्यान नहीं होता क्योंकि मेरे अन्तःकरणमें ऐसा निश्चय है कि किसीलोभसे वा भयसे वा पूजाके वास्ते वा लोगोंके लिये जो शास्त्र मेंसे भगवंत-वचनकी ऊंचनींच परूपना अर्थात् कानामात्रभी ओछाअधिका कहे तो बहुलसंसारी होय। व्याख्यान नहीं देनेसे स्वमतके गृहस्थियोंका मेरे पास आनाजानाभी कम रहताहै इसलिये मुझको व्याख्यान देनाही पड़ताहै। परन्तु मैंनें "श्रीदशवैकालक" और "आवश्यकजी" का जोगबहनेकी क्रिया करीहै सो उसमेंभी शास्त्रोक्तविधिसे उद्देसाआदि बांचानहीं किन्तु वर्त्तमानकी अपेक्षा मूजिब एकमहीनेका जोग श्री सुखसागरजी महाराजके पास करालियाहै इसलिये मैं दशवैकालकजी अक्सरकरके बांचताहूं। हां अलबत्ता दो जगह "नन्दीजी" की तीनगाथामें से व्याख्यान दियाथा क्योंकि उसमें मतमतान्तरका खण्डनमण्डनहै इस वास्ते इन तीन गाथाके उपरान्त व्याख्यानदेनेकी इच्छा मेरी नहींहै और न मैंने दिया सो इसमेंभी व्याख्यानके दिनोंमें निवी और एकासना अक्सर करके करताथा। और रतलाममें लोगोंके पीछे पड़नेसे "उत्तराध्ययनजी" के दो अध्ययन बांचेथे उसमेंभी कई आमल जोगविधिके मूजिब करतारहा। अलबत्ता अध्यात्मकल्पद्रुम अथवा और कोई अध्या-

त्मके प्रकरण आदि बांचताहूं और उन्हींके बांचनेकी इच्छाभी रहतीहै नतु आगमादि अविधिसे बांचना। लोग मुझे साधु कहतेहैं इसका हाल तो मैंने "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" केपांचवें प्रश्नके उत्तरमें लिखाहै इस लिये ग्रन्थ बढ़जानेके भयसे यहां न लिखा। हां जिनधर्म्मका लिंग मेरे पासहै इस लिंगसे इसभांडोपजीवी को साधु कहतेहों तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि अच्छेकी सोहबत होनेसे नीचकोभी लोग बहुत मान देतें हैं। क्योंकि— दोहा— संगतके परतापसे, चढ्यो ईसके सीस। अरे मित्र मोहि जानदे, श्रीगंगाके बीच ॥ अर्थात् एक भंवरा और एक गुबरीला की आपसमें संगत होगई उस संगतके सबबसे गुबरीला अर्थात् गोबर का कीड़ा सूर्यविकासी कमलमें जाबैठा सो भंवरातो सूर्यास्त होनेके वक्त चलागया और गुबरीला उसी जगह रहगया। सूर्य अस्त होनेसे कमल बंद होगया। उस कमलको लेकर शिवजीके भक्तने महादेवके शिरपर चढ़ादिया सवेरेके वक्त महादेवजीके उतरेहुए पुष्प गंगाजीमें बहादिये। तब सूर्योदय होनेसे वह कमल फिर खिला औरवह भंवरा कीड़ाको लेने आया उस वक्त गुबरीले को न देखकर उसने यह दोहा कहाथा इसीरीतिसे श्रीजिनराज सर्वज्ञदेवके लिंगरूपी कमलमें बास होनेसे इस पतित, अधम, अभागे, निर्गुणी, भांडोपजीवीको गृहस्थीलोग साधु कहनेलगे तो कुछ आश्चर्य नहीं। अब इन कुल बखेडोंको छोड़कर हमको जो वर्णन करनाहै सोही करतेहैं कि ऊपरलिखी विधिमूजिब शास्त्र गुरु मुखसे बांचाहोय वही शुद्ध परूपना करेगा। फिर वह सत्पुरुष कैसा होय कि कारण, कार्य, साध्य, साधन, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा देखकर सभामें जो लोग बैठेहैं उनको जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अर्थात् रोचक, भयानक, यथावत् श्रोता की पहचान करके जैसेकोतैसा लाभ करानेके वास्ते आत्माका स्वरूप

ओलखावे अर्थात् उसको बोध करावे और शुभ क्रियाका आदर कराय-
कर शुभ क्रियाके फलका तिरस्कारकरावे इसरीतिका उपदेश देनेवाला
श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके वचनको यथावत कहे सोही सुगुरु है नतु सभा-
रंजन रोचक भयानक देशना देनेवाले ॥

॥ इति श्रीजैनाचार्यमुनि श्रीचिदानन्दस्वामी विरचितायां तृतीय प्रकाश
समाप्तम् ॥

## चतुर्थप्रकाश ।

अब कारणकार्यकी ओलखान करानेके वास्ते कारण की जगह
कारण और कार्यकी जगह कार्य यथावत् दिखातेहैं । श्रीगणधर महा-
राजने द्वादशांगी रचीथी उसमें उन्होंने चारों अनुयोग शामिल रचेथे सो
उस गणधर-रचित द्वादशांगीके एक एक पदमें चार २ अनुयोग अर्थात्
१द्रव्यानुयोग २गणितानुयोग ३धर्मकथानुयोग ४चरणकरणानुयोग थे ।
इन चार अनुयोगोंकी व्याख्या एक पदमेंही शामिलथी परन्तु पड़ता काल
जानकर व जीवोंकी बुद्धिक्षीण जानकर पीछे आचार्योंने भव्यजीवोंके उप-
कारके वास्ते चारों अनुयोगोंको पृथक्२ किये । देखो द्रव्यानुयोगमें तो
सूयगडांगजी अनुयोगद्वारादि ग्रंथहैं । और गणितानुयोगमें कर्मग्रंथ संग्र-
हणीआदिक हैं । और धर्मकथानुयोगमें ज्ञाताधर्मकथा आदिक ग्रंथहैं ।
चरणकरणानुयोगमें श्रीदशवैकालकजी आचारंगजीआदि ग्रंथहैं । इन
चारों अनुयोगोंमें कारण कौन और कार्य कौन है सो जानना चाहिये
क्योंकि जबतक कारणकार्यको न जानेगा तबतक उसमें यथावत् प्रवृत्ति
न होगी । वस्तुका यथावत् स्वरूप जाननेहीसे बतलानेवाले पर यथावत
विश्वास होताहै । जबतक वस्तुको यथावत् नहीं जाने तबतक उसको कै-

साही भलाबुरा कहो उसके जाने बिना कदापि विश्वास नहीं होगा। इ-सवास्ते वस्तुको जानकर विश्वास दृढ़ करनेके लिये दृष्टान्त दिखातेहैं। एक नगरमें बहुतद्रव्यपात्र क्रोडिध्वज सेठथा जिसके दिशावरों में जगह २ बणज ब्योपार था और गुमाश्ते सब जगह काम करतेथे। उस साहूकारके एक पुत्रथा वह बालकपनेमेंही लाड़से बिगड़गया, खेल, कूद, नाचतमाशे में लगारहता, कुछ अपने घरका कारब्योहार नहीं देखता। उस साहूकारने उस लड़केकी शादीभी बड़े ठाठसे कीथी। उसको वह साहूकार बहुत समझाताथा परन्तु वह अपने महाजनी कारब्योहारमें कुछभी न समझ-ताथा और न उस ब्योपारमें कुछ मनलगाता तब उसके पिताने दिक्क हो-कर कहना सुनना छोड़ादिया। कुछ दिनके बाद जब उस साहूकारका अन्त समय आया उस वक्त उस पुत्रको एकान्तमें लेबैठा और एक डिब्बी में बढ़िया २ कपड़ा लगायकर चार झूंठे रत्न अर्थात् काचके टुकड़े धरकर अपने पुत्रसे कहनेलगा कि हे पुत्र तूने मेरा कहना आजतक न माना और कुछ बणजब्योपार न सीखा सो देख मेरे मरनेके बाद ये मुनीम गुमाश्ता ही सब धन खाजावेंगे, धन नहीं रहनेसे तू महा दुःखी होगा, इसलिये मुझे तेरा तर्स आताहै सो तू मेरा कहना करेगा तो फिरभी संभल जाय-गा। इसलिये देख मैं तुझ को ये चार रत्न देताहूं सो तू अपने पास यत्न से रखियो और किसीको मत दिखाइयो। जब तेरे ऊपर अत्यन्त भीड़ पड़े तब एक रत्न बेचकर अपना निर्वाह करियो। सोभी मेरा इतना कहना है कि जो तू मुनीम गुमाश्ते अथवा और किसीको दिखावेगा तो झूंठा रत्न अर्थात् काचका टुकड़ा कहकर तेरे को बहकाय देंगे और एक पैसा न देंगे इसलिये मेरे कहनेको यादरखकर अपने मामाके पास जायकर इन रत्नोंको दिखावेगा तो वह तेरे संगमें छलकपट न करेगा और तेरे-

को दो चार महीना पास रखकर इनको बिकवाय देगा इसलिये तू मेरे वचनको याद रक्खेगा तो सुख पावेगा नहीं तो तू जानै। ऐसी शिक्षा देकर वह डिब्बी उसे देदी और उसने उस डिब्बी को अपने घरमें यत्न से रखदी। वह साहूकारभी अपनी आयु पूर्ण करके परलोकको प्राप्त हुआ। उस साहूकारके मुनीम और गुमाश्ता आदिक ने उस लड़केको होशियार न जानकर अपना २ काबू करना शुरू किया। थोड़ेसेही दिनमें वे गुमाश्तालोग लक्षपति बनबैठे और उस साहूकारका काम बिगाड़दिया। वह साहुकारका लड़का ब्योपार के न समझनेसे रोटियोंको मोहताज होगया और अपने दिलमें विचारनेलगा कि जो मेरा पिता कहगयाथा सोही हाल हुआ जो अब इनको वे रत्न दूंगा तो ये मेरे रत्न खाजावेंगे इसलिये इनको तो नदेना चाहिये परन्तु मामाके पास चलकर इन रत्नोंको बेचलाऊं जिससे मेरा गुजरहो, और कोई उपाय नहीं। तब वह अपने घरसे चलकर अपने मामाके घर पहुंचा और अपना सब हाल कहकर वह डिब्बी खोली और चारों रत्न दिखाये तब वह उन रत्नोंको देखकर अपने जी में कहनेलगा कि ये तो खोटे अर्थात् काचके टुकड़ेहैं जो मैं इससे कहूं कि ये काचके टुकड़ेहैं तब तो जो बात इसके पिताने समझाई वैसीही समझकर मुझकोभी सबके समान जानेगा इसलिये इसका ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे यह अपने आपही जानजाय कि ये खोटे हैं। ऐसे अपने दिलमें विचारकर उससे कहने लगा कि हे भानेज! इन रत्नोंका अभी तो कोई ग्राहक नहीं और विना ग्राहकके इनके दाम ठीक ठीक वंटे नहीं इसलिये जो तू इस जगह कुछ दिन रहे तो ये रत्न तेरे सामनेही बिकवादूंगा। तब वह कहनेलगा कि मेरे घरमें तो धानभी नहीं मेरा रहना यहां कैसे बने? तब वह कहनेलगा कि घरका तो बन्दोबस्त

मैं करताहूं परन्तु तू इसी जगह रह और दूकान पर बैठा कर क्योंकि परदेशी ग्राहक न जाने किस वक्तमें आजावे, जो तू दूकानपर नहीं होगा तो लेनेवाला कुछ बैठा न रहेगा इसलिये तू यहीं रह । तब उसनेभी यह बात मंजर करली । तब उसने वहडिब्बी बन्दकर उसके हाथमें दी और घरलेजाकर उसको एक मालिया तालाकुंजी-वाला बतादिया उसमें वह रहनेलगा और दूकानपर जानेलगा । ब्योपारबणज जैसा उसका मामा चलाताथा वैसाही वहभी करनेलगा सो थोड़ेसेही दिनमें हीरापन्ना वगैरा जवाहिरातकी अच्छी तरहसे परीक्षा करने लगा और जवाहिरातके परखनेमें होशियार होगया । तब उसका मामाभी उसकी सलाहसे जवाहिरात लेनेबेचने का काम करनेलगा । एक दिन उसके मामाने एक हीरा मोललिया और उसे दिखाया । उसने उस हीरेको देखकर कहाकि मामाजी इसमें तो एक दागहै, नहींतो जितने में आपने लियाहै उससे बीसगुने दाम मिलते । दोचार दिनके बाद वह कहनेलगा कि हे भानेज ! आज मैंने सुनाहै कि फलानी जगह एक ब्योपारी अच्छे२ बढ़िया रत्न लेनेको आयाहै सो तूभी अपने रत्नोंको जुदी२ डिब्बीमें रखकर लेआ और ये तीन डिब्बियां लेजा । वह मकान परगया और अपनी डिब्बीको खोलकर देखा तो वे काचके टुकड़े निकले । उनको देखकर विचारने लगा कि मेरे पिताने यह क्या कामकिया परन्तु फिर बुद्धि उपजी कि मेरे पिताने मुझे संभारनेके वास्ते यह काम कियाथा । इतना विचारकर उन रत्नोंकी डिबिया लियेबिना अपनी दूकानपर चलाआया और मामाको कहा कि वे काचके टुकड़ेथे । मेरे पिताने आपकी भलामण दीथी सो उनकी भलामणसे और आपकी सोहबतसे अब मुझको ब्योपार करना आगया इससे मैं दुःख न पाऊंगा और

अपनी इज्जत मूजिब फिर अपने घरका कारव्योहार संभारलूंगा । कुछ दिनके बाद वह अपने घरको चला आया और अपना वणजव्योपार करके बापकासा काम चलानेलगा । जैसे उस लड़केको उसके मामाने जवाहिरातकी परीक्षा सिखाई इसीरीति से श्रीवीतराग-आज्ञासंयुक्त सिद्धान्त के रहस्य जाननेवालेभी पेश्तर भव्यजीवोंको कारणकार्यकी परीक्षा सिखातेहैं अर्थात् जानकार करदेतेहैं जब वह भव्य जीव इस कारणकार्यका जानकार होगा तब वह यथावत प्रवृत्ति भी करेगा । तोभी यथावत् प्रवृत्ति तब होगी कि जब लाभ अलाभको जानेगा । इसलिये जो उपदेशदाताहैं वे कार्य वतायकर लाभ अलाभके वास्ते पदार्थमें ग्लानिवारुचि दोनोंको दिखातेहैं तब भव्य जीव उसमें हर्षसहित उद्यम वरावर करते हैं। इसलिये श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव के स्याद्वाद अनेकान्त मतके जाननेवाले हैं सो पेश्तर तो कारणकार्यकी परीक्षा फिर पदार्थ में ग्लानिवारुचि दिखातेहैं क्योंकि जिस वस्तुमें ग्लानि होजातीहै वह तुरन्तही छूटजातीहै । एक शहरमें एक वड़ाभारी साहूकारथा उसका नाम लक्ष्मीसागर था उसके एक पुत्रथा सोभी वणजव्योपार बोलचाल अर्थात् संसारी बातोंमें बहुत होशियारथा परन्तु उसमें वेश्यागमन करनेका वड़ा भारी ऐवथा उसमें हजारों लाखोंही रुपया खर्च करताथा । उसका ऐव छुड़ानेके वास्ते उसके पिताने परोक्ष अनेक तरहकी कोशिश की परन्तु उसका ऐव नछूटा । तब उस सेठने विचारा कि इसके वास्ते रोजीना खर्च देकर उजागर भेजनाही ठीकहै क्योंकि दुवकाचोरी जानेसे वहुत रुपया खर्चा पड़ताहै । और इसके शौकमें इसको ग्लानि पहुंचानेका उपायभी करना मुनासिब है । जब इसको उसमें ग्लानि होगी तो यह आपही छोड़देगा । ऐसा विचारकर अपने पुत्रको कहनेलगा कि हे पुत्र चार घड़ी दिन रहाकरे

तब सैर करनेको चले जायाकरो और पहर डेढ़पहर राततक सैरकरके अपने घर आजायाकरो और जो तुमको रुपया चाहिये सो रोकड़ियासे लेजायाकरो। इसरीतिसे उसको समझायकर उसको ग्लानि उपजानेका उपाय सोचनेलगा। शामके वक्त चार घड़ी दिन रहतेही वह अपने पुत्र-को कहै कि तुम्हारा सैर करनेका वक्त आगया और यह काम तो पीछे होजायगा। इसरीतिसे दोचार मास हुए तो वह साहूकारका पुत्र भय छोड़कर अच्छी तरहसे वेश्याओंके पास जानेलगा क्योंकि पेश्तर तो पिताका भयथा अब सोभी न रहा। चन्दरोजके बाद एक दिन उसका पिता कहनेलगा कि आज शामके वक्तमें दूकानपर कुछ काम विशेषहै इसलिये आज मतजाओ इसके बदलेमें सवेरे के वक्त सैर करआना। इत-ना सुनकर वह साहूकारका बेटा न गया। तब उस साहूकारने पीलेबा-दल अपने पुत्रको उठाया और कहनेलगा कि हे पुत्र तू शामको सैर कर-ने नहींगया सोअब उठ और सैर करआ। तब वह उठा और पिताके कहनेसे सैर करनेको घरसे निकला और जिन२ वेश्याओंके पास जाकर शामको उनका रूप देखकर मोहित होताथा उनको सोतीहुई देखकर ग्लानि आनेलगी क्योंकि उन वेश्याओंके केश तो बिखरे हुए थे और आखोंमें गीड़ आरहेथे, मुंह काजलसे काला होगयाथा और रातको पान खानेसे होठोंपर फेफड़ी आरहीथी और बुरे मैलेसे कपड़े पहने डां-कनकी तरह सोरहीथीं। उनको देखकर उसके चित्तमें ग्लानि आई और कहनेलगा हाय! हाय! इन चुड़ेलोंके पास लाखोंरुपयोंका नुक-सान मैंने किया। ऐसा चित्तमें उदासहोकर अपने घरको चलाआया और उस वक्त अपनी औरतको देखातो हूबहू रंभाके मानिन्द मालूम पड़ने लगी। तब उधरसे तो ग्लानि और इधर घरकी स्त्रीमें रुचि होनेसे सन्तोष

कर बैठा। और दिलमें ऐसा ठानलिया कि अब कभी उन वेश्याओंके पास नहीं जाऊंगा। फिर जब शामका वक्त हुआ तब उसका पिता कहनेलगा कि हे पुत्र! अब तेरा सैरका वक्त होगया सो तू जा। उस वक्त सुनकर चुप होगया। फिर थोड़ीसी देरके बाद वह सेठ कहनेलगा कि हे पुत्र! तू बेशक जा अपने घरमें धन बहुतहै तू किसी बातकी चिन्ता मतकर अपनी सैरको मतछोड़। तब वह पुत्र कहनेलगा कि हे पिताजी! उस जगह जानेसे मुझे ग्लानि होगई सो मैं उस जगह कदापि न जाऊंगा इसलिये आप अब न कहिये, इस कहनेसे मुझे लज्जा उत्पन्न होतीहै। इसरीतिसे कहकर वह साहूकारका पुत्र उस वेश्यागमन रूप ऐबको छोड़कर अपने घरमें संतोषसे बैठगया। इसीरीतिसे श्रीसर्वज्ञदेव वीतरागके आगमोंके वेत्ता अर्थात् जाननेवाले आचार्य उपाध्याय साधुभी गृहस्थीको कारणकार्य बतायकर फिर उसमें ग्लानिसे लाभअलाभदिखायकर जिज्ञासुका कल्याण करतेहैं नतु जबर्दस्ती करके त्याग पचक्खाण कराकर ॥

अब हम कारणका स्वरूप कहतेहैं कि शास्त्रमें चार अनुयोग कहेहैं इन चारों अनुयोगोंमें कारण कौनहै और कार्य कौनहै सोही दिखातेहैं। पेश्तर कारण कितनेहैं सो शास्त्रमें कारण चार कहेहैं १समवायी कारण २ असमवायीकारण ३ निमित्तकारण और ४ अपेक्षाकारण और किसी जगह अपेक्षाकारण के विना तीनही कारण मानेहैं यथा आप्तमीमांसायां "समवाय असमवाय निमित्त भेदात्।" और कितनेही शास्त्रोंमें दोही कारण कहेहैं १उपादानकारण २निमित्तकारण। इसरीतिसे शास्त्रोंमें कारण कहे हैं परन्तु उपदेशदाता जैसा जिज्ञासु देखे वैसेही कारणोंको समझाय कर बोधकरावे अर्थात मन्दमतिको चार कारण बतायकर बोध करावे और उससे तेज हो उसको तीन और उससेभी तेज बुद्धिवाला हो उसे

दोही कारण बताकर बोधकरावे । समवायी कारण उसको कहतेहैं कि जैसे मिट्टीका घट बनताहै तो मिट्टीतो उसमें समवायी कारणहै क्योंकि मिट्टीमेंसे घट उत्पन्न होताहै और महाभाष्यमें कहाहै कि "तद्दवकारणतं तवोपडस्सेहजेणतम्मइया ॥ विवरीयमन्नकारण मित्थंवोमादओतस्स" ॥ इस गाथाके व्याख्यानमें "यदात्मकंकार्यंदृश्यतेतदिहतद्रव्यकारणं उपादानकारणंयथातंतवःपटस्यइति" अब असमवायी कारणका लक्षण कहतेहैंकि दो कपालोंका संयोग अथवा तन्तुओंके पटसे संयोग सो असमवायी कारणहै । इसके कहनेका प्रयोजन यहहै कि समवायी कारणमें रहकर कार्यको उत्पन्न करे उसका नाम असमवायी है । जैसे घटका असमवायी कारण कपाल आदिहै । और कपालोंके संयोगकोही असमवायी कारण कहतेहैं । अब निमित्त कारणका लक्षण कहतेहैं कि समवायी और असमवायी कारणसे भिन्न अर्थात् जुदाहो और कार्यको उत्पन्न करे जैसे मिट्टी घटका समवायी कारणहै और मिट्टीसे भिन्न डंड चक्रादि जुदेहैं परन्तु उनकेबिना घट बन नहींसक्ता इसलिये ये निमित्त कारणहैं । अब अपेक्षा कारण का लक्षण कहतेहैं काल आकाशादि अपेक्षा कारणहैं क्योंकि आकाश पोला नहीं होने से वस्तु आदि रहनहीं सक्ती इसलिये यह अपेक्षा कारण जरूरहै और जो अपेक्षाको छोड़कर तीनही मानेंतो हम पहिले अर्थ लिखचुकेहैं औरजो इन तीनोंमें असाधारण कारण नहीं मानें तो दोही कारणोंमें सब कारण समाजातेहैं क्योंकि समवायी कारणकोही उपादान कारण कहतेहैं इनदोनों शब्दोंका एकही अर्थहै । सो असाधारणकारण उपादानकारणकेही अन्तर्गतहै और निमित्तकारणके दोभेद करनेसे अपेच्चा कारणको जुदा लेतेहैं परन्तु अपेक्षाकारणभी निमित्त कारणके अंतर्गतहै । अब उपादान और निमित्त कारणका लक्षण दूसरी

रीतिसेभी कहते हैं । "कारण कार्यको उत्पन्न करें और वह कारण अपने स्वरूपसे कार्यमें बना रहे और कारणके नष्ट होनेसे कार्य नष्ट हो जाय उसका नाम उपादान कारणहै" । दूसरा "कार्यसे कारण भिन्न हो कर कार्यको उत्पन्न करे और कारणके नष्ट होनेसे कार्य नष्ट न हो उसे निमित्त कारण कहते हैं ।" अब चार अनुयोगोंमें से कारण कौनहै और कार्य कौनहैं ? इस जगह चारित्ररूपी कार्यहैं तो चरणकरणानुयोग तो कार्य ठहरा । यह कार्य बनानेके वास्ते कारणभी अवश्यमेव चाहिये सो हम कार्य दिखातेहैं कि चार कारण मानकर कार्य-सिद्ध करे उस जगह तो समवायी कारण द्रव्यानुयोग है । क्योंकि देखो द्रव्यको जानेगा तो द्रव्यका जो गुण वही चारित्र अर्थात् रमणतारूप कार्य होगा तो द्रव्यानुयोग इसका समवायी कारण हुआ । तो कहतेहैं कि एक जीवद्रव्यभी द्रव्यानुयोगमें द्रव्यहै इसलिये चारित्रका समवायी कारण हुआ । अब दूसरा असमवायी कारण गणितानुयोग अर्थात् कर्मप्रकृति यह असाधारण कारण है क्योंकि यह कर्म प्रकृति जीव के सम्बन्धसे जीवमेंही रहनेवालीहै । तीसरा धर्मकथानुयोग निमित्त कारण है क्योंकि देखो धर्मादिकको श्रवण करनेहीसे चारित्रमें रुचि होतीहै क्योंकि दूसरोंके धर्मको अलाभ जान कर छोड़ेगा और क्रिया आदिक करेगा यह निमित्त कारणहै । इस जगह काल स्वभाव आदि पांच समवाय अपेक्षा कारणहैं क्योंकि जबतक ये पांच समवाय न मिलें तबतकभी कार्य नहीं होताहै । जबतक इन कारण आदिकों को न समझे तबतक यथावत् चारित्र पालना कठिनही है ॥

**शंका**— अजी मोक्षके मिलने और जन्ममरणके मिटनेको कार्य कहतेहैं और तुमने तो चारित्रही कार्य ठहराया, इसका कारण क्याहै ? ॥

**समाधान**— भोदेवानुप्रिय ! अभी तूनें श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके स्याद्वादमतकी परूपना करनेवाले गुरुसे प्रायःकरके परिचय नहीं पाया दीखेहैं। जो इस जगह चारित्रको कार्य ठहराया उसका प्रयोजनभी तुझे न मालूम हुआ क्योंकि तूने पक्षपात कदाग्रह समाचारीकेही ग्रंथ श्रवण कियेहैं नतु स्याद्वाद रीति के। इसलिये हेभोलेभाई ! हमारे अभिप्रायको समझ और कुछ द्रव्यानुयोगका परिचय कर जिससे तुझको इन बातों का बोध हो । देख जो कार्य होताहै सोही कारण होजाताहै तो जब मोक्षमार्गका साध्यसाधन होगा उस वक्तमें चारित्र और ज्ञानदर्शन तो उपादानकारण होंगे और कालस्वभावआदि निमित्तकारण मिलेगा अ-थवा चारित्र समवायीकारण और ज्ञानदर्शन असाधारणकारण और गुरु आदिक निमित्तकारण और कालस्वभावआदि अपेक्षाकारणहैं । अथवा चारित्र ज्ञान दर्शन उपादानकारण और काल स्वाभावआदि निमित्तका-रणहैं । इस रीतिसे जो द्रव्यानुयोगका अनुभव अर्थात् षटद्रव्यका विचार करनेवालेहैं वेही पुरुष इन कारणकार्योंको अनेकरीतिसे समझाय सक्तेहैं नतु भेष लेकर पंडितोंकी सहायतासे न्याय व्याकरण अथवा जैन शास्त्रोंको बांचकर पंडित बनजानेसे । क्योंकि देखो मेहका बरसना तो नदीके पूर होनेका कारणहै और पूर होना कार्यहुआ। अब जब नदी बहनेलगी तब बहना कार्य हुआ और पूर होना जो पेश्तर कार्य था सो नदीके बहनेका कारण हुआ। अब फिरभी नदीका बहना जो कार्यथा सोही खेतोंमें वा मनुष्योंको सहायता देनेका कारण होगया और सहा-यतारूप कार्य्य हुआ। इसीरीतिसे मिट्टीका पिंड, स्थासरूप कार्यका का-रणहै, और वह जो स्थासरूप कार्य था सो कोशका कारण हुआ, और कोश कार्यहुआ और कोश कुशलका कारण हुआ, और कुशल कार्य

हुआ और कुशल कपालका कारण और कपाल कार्य, कपाल कारण और घट कार्य। इसरीतिसे कार्य जो है सोही कारण होजाताहै और दूसरे कार्यको उत्पन्न करताहै। सो इस जगहभी चारित्र रूप कार्य भगवत-आज्ञा-संयुक्त मोक्षका कारणहै सो विशेष करके प्रश्नोत्तर समेत "द्रव्यअनुभवरत्न" जो एक जिज्ञासुको विशेष बोध करानेके वास्ते बनायाहै उसको देखने से तुम्हारा सब संदेह दूर होजायगा। इसलिये इस ग्रन्थमें विशेष वर्णन नहीं लिखा। क्योंकि हमको इस ग्रन्थमें आत्मार्थीके वास्ते जिनोक्त विधिका वर्णन करनाहै और इस कारणकार्य अर्थात् द्रव्यानुयोग की व्याख्यामें सूक्ष्म विचारहै सो वह हरेक जिज्ञासुकी समझमें आना कठिनहै। और सूक्ष्म विचार लिखनेसे उसके समझानेवाले आत्मार्थीतो थोड़े और वाद विवाद अथवा पंडिताई जतानेवाले बहुतहैं। क्योंकि देखो इस पंचम कालको बतायकर शरीरको तो कुछ जोर देते नहीं केवल इन्द्रियोंका भोग करतेहुए निश्चयको पकड़ बैठतेहैं। सोभी निश्चयको समझते तो नहीं हैं, केवल निश्चयको पकड़नेसे ज्ञानी बनकर भोलेजीवोंको भ्रमजालमें फंसायकर, व्यवहारसे उठायकर, अपने मतको चलायकर, पुरुषार्थ को मिटायकर, इन्द्रीविषयभोगोंमें लगायकर, त्यागभंग करायकर, संसार में रुलातेहैं। सो इस निश्चय व्यवहारके मध्येऊपर लिखेहुए ग्रंथमें विस्तार करके लिखाहै परन्तु किंचित् यहांभी लिखतेहैं कि निश्चय कुछ पदार्थ नहीं केवल शब्दहै ॥

**शंका**— अजी निश्चयको तुम कुछ नहीं ठहरातेहो परन्तु शास्त्रोंमें निश्चयकोही बहुतकरके कहाहै। जबतक निश्चय नहीं हो तब तक कोई काम न हो, व्यवहार तो केवल बालजीवोंके दिखानेके वास्तेहै। क्योंकि देखो श्रीयशविजयजी उपाध्यायजीने सवासौ गाथाके स्तवनमें निश्चयही

निश्चयको बयान कियाहै; व्यवहार तो बालजीवोंके बहलानेके वास्तेहै ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! अभी तुझको जिनागमके रहस्यकी खबर न पड़ी और तू निश्चयव्यवहारको अभी समझता नहींहै और तेरे कहनेसे हमको ऐसाभी मालूम हुआकि तुझको निश्चय व्यवहारके कहने वाले गुरु न मिले इसलिये तेरेको यह शँका हुई तो अब सुन। निश्चय कुछ पदार्थ नहींहै। निश्चय एक शब्दहै सो इसका अर्थ ऐसाहै कि निश्चय नाम "नियामक" का अर्थात् नियमा करके, तो इससे क्या तात्पर्य निकला कि जैसे किसी पुरुषने कोई काम किया तब उससे दूसरा पुरुष पूछनेलगा कि तुमने फलाना कामकिया ? वह कहनेलगा कि मैंने करलिया। तब पूछनेवाले पुरुषको सन्देह उठा और बोला कि अरेभाई निश्चय काम कियाहै कि केवल हमको बहकातेहो ? करलियाहो तो निश्चय कहदो। यहां निश्चय शब्द सन्देहको दूर करनेवाला ठहरा। दूसरा औरभी लौकिक व्यवहार दिखातेहैं। लौकिकमें किसीका कोई काम करनाहो तो कामके करनेवाला शख्स कहताहै कि तुम मेरी तरफसे निश्चय रक्खो मैं तुम्हारा काम करूंगा कोई फिकर मतकरो। इस जगहभी विचार करो कि जिसका काम होनेवाला था वह इस निश्चय शब्दको सुनकर उस कामकी चिन्तासे दूर होगया। इसलिये निश्चय शब्दका अर्थ वहीहै जो हम ऊपर लिखआयेहैं। परन्तु इस निश्चयशब्द के अर्थको नहीं जाननेसे लोग निश्चय २ ऐसा तोतेकी तरह टेंटें करतेहैं। क्योंकि देखो निश्चयव्यवहार ऐसा शब्द कहनेसे तात्पर्य यहीहै कि सन्देहरहित जो व्यवहार सो कार्यकी सिद्धि करेगा नतु निश्चय जुदी वस्तुहै। क्योंकि बिना यथावत् गुरुके मिले इस स्याद्वादमतका रहस्य मिलना कठिनहै। देखो अभीके वक्तमें आगम२सब कोई कहतेहैं परन्तु आगमशब्दका यह

अर्थ नहीं और यथावत् अर्थ गुरुकुलवास विना कोई नहीं जानसकता। केवल पुस्तकोंको आगम करके आगे रखतेहैं और दिखातेहैं परन्तु उसके अक्षरोंका भावार्थ नहीं जानते। क्योंकि आगम तो दूसरी चीजहै पुस्तकादि नहीं। देखो श्रीस्याद्वादरत्नाकर है टीका जिसकी ऐसा जो मूल "प्रमाणनयतत्वालोकालंकार" जिसके चतुर्थ परिच्छेदमें आगमका लक्षण कियाहै सोलिखतेहैं "आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः" इसका अर्थ "स्याद्वाद रत्नाकर" वा "स्याद्वादरत्नाकरअवतारका" में विस्तारसे है परन्तु यहां तो अक्षरोंका अर्थ लिखताहूं कि ( आप्त ) क० तीर्थंकरादि केवल ज्ञानी उनके मुखसे (वचनात) क० अमृतरूपी वचनसे (आविर्भूत) क० प्रगट हुआ ऐसा जो अर्थ उसका जो ( सम्वेदन ) क० जानना उसीका नाम ( आगम ) क० आगमहै नतु पुस्तकादि। इसीरीतिसे निश्चय शब्द काभी अर्थ जानलेना। व्यवहारका सन्देह मिटानेके ताईं निश्चय है। व्यवहारके कई भेदहैं सोही दिखातेहैं-१शुद्धव्यवहार २ अशुद्ध व्यवहार। उस शुद्ध व्यवहारकोही निश्चय कहतेहैं। सो इसके भेद तो कुछहैं नहीं परन्तु जिज्ञासुको समझानेके वास्ते जुदी प्रक्रिया दिखातेहैं। वह प्रक्रिया इस रीतिसे है कि ज्ञानदर्शनचारित्र गुणहैं सो एकरूपहैं परन्तु जिज्ञासुके समझानेके वास्ते जुदे २ कहे, इस रीतिका शुद्ध व्यवहारहै। और अशुद्धके भेद येहैं-१शुभ २अशुभ ३उपचरित ४अनुपचरित। इसरीतिसे व्यवहारके भेदहैं, निश्चय तो सन्देह दूर करनेवाला शब्द है। इसलिये इस ग्रंथमें व्यवहारकाही वर्णन कियाहै परन्तु शुभ अशुभ दिखाना अवश्य है सो इस प्रकाशमें कारणकार्यकी व्यवस्था कही ॥

॥ इति श्रीजैनाचार्यमुनि श्रीचिदानन्दस्वामी विरचितायां चतुर्थ प्रकाश समाप्तम् ॥

## पंचम प्रकाश।

**दोहा**—शासनपति श्रीबीरको, नमनकरूं नितमेव। आगम अनुभव विधि कहूं, जिमि कही जिनेश्वरदेव॥ १ ॥ मंगल करनेके अनन्तर चौथे प्रकाशसे पांचवेंका सम्बन्ध क्याहै सो कहतेहैं कि चौथे में तो कारणकार्यकी परीक्षा की और व्यवहारको सिद्धकिया। व्यवहार सिद्ध हुआ तो अब विधि कहनेका अवकाश मिला इसलिये इस पांचवेंमें विधि का वर्णन करतेहैं। इस प्रकाशमें १ चैत्य अर्थात् मन्दिरकी २ यात्राकरनेकी और ३ स्वामीवत्सल आदिकी विधि कहतेहैं क्योंकि इन तीनों चीजोंमें समकित दृष्टि अर्थात् अव्रती समकितधारी श्रावकभी शामिलहै। इसलिये पेश्तर समकितदृष्टि आदिक की चैत्यवन्दनआदिक की विधि कहके पीछे देशव्रती आदिककी विधि कहेंगे। इसलिये जिस रीतिसे हमने निर्देश कियाहै उसीरीतिसे आदेश करतेहैं, इसलिये प्रथम गृहस्थीके वास्ते मन्दिरमें जानेकी विधि कहतेहैं कि गृहस्थी जब घरसे चले उसवक्त निस्सीही कहै अथवा मन्दिरके पगोथियोंपर चढ़े उसवक्त निस्सीही कहै॥

**शंका**—आपने दो वचन कैसे लिखे ? यातो घरसे निकलतेही करे या मन्दिरके पगोथियोंपर चढतेहुए निस्सीही करे॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! इस जगह कोई आचार्य तो कहतेहैं कि घरसे निकलकर निस्सीही करें। इस निस्सीहीका प्रयोजन यहहै कि निषेध कियाहै सब संसारी काम, तो गृहस्थी जब घरसे जायतो कोई संसारी काम न करे इस अभिप्रायसे कहतेहैं। कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि गृहस्थी संसारमें फंसाहुआहै सो जो घरसे निस्सीही कहेगा और बीचमें काम आलगा तो उस काममें कदाचित् गृहस्थी चलायमान हो

तो निस्सीही का भंग होगा। कदाचित् निस्सीहीके भयसे उस काममें न जाय और सीधा मन्दिरमेंही चलाजाय तो उस कामकी चिन्तासे चित्त की चंचलतासे भगवत्का दर्शन यथावत् न करसकेगा तो उसको यथा-वत् दर्शन करनेका लाभ न होगा। अथवा अविधि और चित्तकी चंच-लतासे मन्दिरमें अधिक न ठहर सकेगा इसलिये मन्दिरके पगोथियों पर निस्सीही कहना ठीक है ॥

शंका—अजी आपने जुदे२ आचार्योंके अभिप्राय जताये तो जि-ज्ञासु किस बात पर श्रद्धा रखकर विधि करे क्योंकि सर्वज्ञका तो एकही वाक्यहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! इस सर्वज्ञ-वचन स्याद्वादमतका रहस्य विना गुरुकुलवासके मिलना कठिनहै सो परोपकारी आचार्योंका प्र-योजन न समझनेसे तुमको दो वाक्योंकी शंका होतीहै परन्तु उन दोनों का प्रयोजन एकहीहै और आचार्य लोग जो व्याख्यान देतेहैं सो अपेक्षा लेकर कहतेहैं। सो उन आचार्योंकी अपेक्षाको तो वह जाने जो उनके चरणोंकी सेवा करे अथवा उन आचार्योंपर विश्वास रखकर इन्द्रियोंके विषयादिको त्यागनेवालेको और अध्यात्मशैलीसे वार२ उनकी अपेक्षाको विचारतेहुए अनुभववालेको किञ्चित् रहस्य प्राप्त होगा नतु दुःखगर्भित वैराग्यवाले भेषधारियोंको। अब देखो प्रयोजन कहतेहैं कि जो आचार्य महाराज घरसे निकलकर निस्सीही कहना कहतेहैं वे तो इस अपेक्षासे कहतेहैं कि जो गृहस्थी दृढ़ चित्त उत्कृष्ट अभिप्रायवाला कि जिसको देवताभी चलायमान करें तो न चले और धर्ममें है उत्कृष्टी वृत्ति जिसकी ऐसा श्रावक घरसेही करे क्योंकि वह धर्मके सिवाय संसारी कृत्य वे मन से करताहै। इसलिये उसको कोई संसारी कृत्यकी बात रास्तेमें कहे तोभी

उस संसारीकृत्यमें उसके चित्तकी चंचलता न होगी क्योंकि वह संसारी कृत्यसे तो विरक्त है और उसको धर्मकृत्यसे रागहै इस अपेक्षासे आचार्योंका कहनाहै कि घरसे निकलके निस्सीही कहे। और दूसरे आचार्यों की अपेक्षा यहहै कि जघन्य मध्यम गृहस्थी मन्दिरकी पगोथिया पर जायकर निस्सीही कहे क्योंकि उन जघन्य मध्यम गृहस्थियोंको अनादिसे संसारीकृत्यसे अभ्यास तथा परिचय बनाहुआहै सो संसारीकृत्य सुनने से उनका चित्त चंचल होजाय इसवास्ते घरसे न कहे इसलिये उपकार बुद्धिसे आचार्यने मंदिरके पगोथियापर चढ़कर निस्सीही कहना कहा। सो दोनों तरह की रीति कहनेका अभिप्राय आचार्योंका यहहै कि किसी रीतिसे जिज्ञासुको यथावत् धर्म्मका लाभहो नतु एक का एकने निषेध किया। अब इस अभिप्रायसे दोनों रीति ठीक हैं जैसी जिसकी रुचि हो वैसा करो। अब देखो जब वह निस्सीही कहके ऊपर चढ़े तब उसने संसारीकृत्य अर्थात् कर्मबंध हेतुका निषेध कियाहै इसमें प्रथम निस्सीहीका प्रयोजन कहा। अब निस्सीही कहनेके बाद धोतीकी एक लांग खोले और दूसरी लांगको वैसेही रक्खे और दुपट्टाका उत्तरासन करे। फिर ऊपर पगोथियेपर चढ़के दूरसे प्रभुका मुखारविंद देखतेही अंजुली मस्तकपर चढ़ायकर नमस्कार करे और प्रभुके चेहरेको देखतेही शरीरका रोम२ प्रफुल्लित हो अर्थात् जैसे सूर्यके देखनेसे सूर्यविकासी कमल खिलजातेहैं इसरीति से प्रभुको देखतेही शरीर और चित्त प्रफुल्लित होजाय। और ऐसा विचारने लगे कि धन्य आजका दिन, धन्य घड़ी, धन्य भाग्य मेरा जो मुझको त्रिलोकीनाथ जगतगुरु सर्वज्ञ निष्कारण परदुःखहरनेवाले ऐसे वीतराग अरिहंत परमेश्वर का दर्शन हुआ। ऐसा विचारताहुआ मंदिरकी सारसंभाल फूटाटूटा असातनादिकको देखकर

जो बात जिसको कहनीहो उसको कहकर फिर तीन प्रदचिणा दे फिर निस्सीही कहे। इस निस्सीही कहनेसे मंदिरके टूटेफूटे कामआदिक कहनेका निषेध किया। अब निस्सीही कहनेके बाद फिर नमस्कार करे और फिर चांवल हाथमें लेकर इस मंत्रको पढ़े—ॐऽर्हतंप्रीणनंनिर्म्मलंवत्य मांगल्यं सर्व सिद्धिदं ॥ जीवनं कार्य संसिद्धो भूयान्मे जिनपूजने ॥ इस मंत्र को पढ़े और चांवल हाथमें ले मंत्र पूर्ण करके चांवलोंकी तीन ढिगली करे उस वक्तमें ज्ञान दर्शन चारित्र विचारे। फिर दूसरे मंत्रके संग साथिया करे उस वक्त ऐसा विचारे कि हे प्रभु! मैं चार गतिसे निकलूं। फिर तीसरे मंत्रको पढ़कर सिद्धशिला बनावे। उस वक्त मनमें ऐसा विचारे कि मुझको सिद्धशिला प्राप्त हो। कदाचित् फलादि चढ़ाना हो तो इस मंत्र से चढ़ावे। मंत्र— ॐ अर्हंहुं जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्य फलं मोक्ष फलं दद्याज्जिनार्च्चने तत्रैव जिनपदाग्रसंस्थितं ॥ इस मंत्र से फल को चढ़ावे। फिर तीसरी निस्सीही कहे तीसरी निस्सीही कहेके बाद तीन इच्छामिखमासमणो देकर इरियावही पडिकमे, फिर काउसग्ग करे उस वक्त काउसग्ग में गुरुकी बताईहुई यथावत विधिसहित श्रीजिनेश्वर भगवानके सामने मन वचन और काय करके मिच्छामिदुक्कडं देकर अपनी आत्माकी शुद्धि करे। सो विधितो विना गुरुकुलवास अर्थात् आत्मार्थी सत्पुरुषके विना मिले नहीं सो इसकी विधि तो हमने जिनको उपदेश दिया है उनको बताईहै सो वेलोग करतेहीं होंगे क्योंकि ऐसी विधिआदिककी बातें ग्रंथोंमें नहीं लिखीजातीहैं क्योंकि गुरुआदिक पात्र अपात्र देख करके वस्तु बतातेहैं। फिर काउसग्ग पढ़कर 'लोगस्स' कहे। फिर बैठकरके चैत्यवन्दन करे। इसरीतिसे चैत्यवन्दन की विधि कही और पूजा आदिककी विधि तो हमने "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" में कहीहै

इसलिये यहां न कही, परन्तु यह चैत्यवन्दन पूजनादिविधि सूर्यकी साख से अर्थात् दिन अच्छी तरहसे उगेके बाद प्रभुका मुखारविंद अच्छी तरह से देखनेमें आताहै इसलिये विधिसंयुक्त दिनमेंही करना ठीकहै क्योंकि देखो भगवतआज्ञासंयुक्त जो विधिका करनाहै सो भव्यजीवोंको लाभ-कारीहै और अविधिसे करनाहै सो अलाभकारी है क्योंकि देखो एकतो अविधिसे भगवतआज्ञाका विराधक होताहै। दूसरा अविधिके करनेसे जिस लाभके वास्ते करतेहैं सो लाभतो नहीं होताहै किन्तु अलाभ होजा-ताहै इसलिये आत्मार्थियोंको जिनाज्ञासंयुक्त विधिका करनाही ठीकहै नतु अविधि का ॥

**शंका**—अजी तुमनेतो चैत्यवन्दन आदि विधि दिन मेंही करनेका लिखा परन्तु वर्त्तमान कालमें तो रात्रिमेंभी दर्शन चैत्यवन्दन आदि कर-तेहैं सो यह प्रवृत्ति सब जगह दीखतीहै और लोग कररहेहैं तो आप-ने दिनमें तो करना कहा और रात्रिमें करनेकी नाहीं कही इसका कार-ण क्याहै ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! हमने इस ग्रंथकी आदिमें प्रतिज्ञा की है कि व्यवहार और जिनाज्ञाका इस ग्रंथमें वर्णन करेंगे इसलिये इस जगह जिनाज्ञा और विधि कहनेसे ही हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी और आत्मार्थी भव्यजीवों को इस स्याद्वादमत के रहस्य से यथावत जिनधर्म की प्राप्तिहोगी इसलिये हमको विधिसे ही प्रयोजन है नतु अविधि से॥ और जोतुमने कहा कि वर्त्तमान काल में सर्वदेशों में रात्रिकी प्रवृत्ति है यहकहनाभी ठीक नहीं क्योंकि देखो गुजरात आदि देशोंमें आर्ती किये के बाद मन्दिर के पट मंगल करदेते हैं फिर मन्दिर में कोई श्रावक नहीं जाता है क्योंकि भगवत-आज्ञा-भंग दूषण से कोई नहीं जाता इसलिये

सब देशों में यह प्रवृत्ति है ऐसा तुम्हारा कहना असंगतहै ॥

**शंका**— आपने यह कहा सो तो ठीक परन्तु हम जब साधुओंसे पूछतेहैं कि महाराज गुजरात आदि देशमें रात्रिमें मन्दिर नहीं जाते इस का कारण क्याहै तो प्रायः करके बहुत साधु तो कहतेहैं कि रात्रिमें मन्दिर जानेकी विधि नहीं परन्तु कोई साधु ऐसाभी कहतेहैं कि परमेश्वरकी भक्ति जब करे तबही अच्छी, रात्रि क्या और दिन क्या ? और जो तुम गुजरातके मध्ये कहतेहो सो तुम्हारेको खबर नहीं, उन गुजराती लोगोंमें तो काम-धन्धा नहीं इसलिये वे लोग दिनमेंही करलेतेहैं रात्रि में नहीं जाते, परन्तु तुम लोगोंमें तो काम-धन्धा व्यवहारादिक दिनमें बहुतहै इसलिये दिनमें सुभीता नहीं हो तो रात्रिमें भक्ति करना ठीक है क्योंकि प्रभुकी भक्तितो जबकरे तबही ठीकहै ऐसा हम सुनतेहैं ॥

**समाधान**— भोदेवानुप्रिय ! जो ऐसा कहताहै वह साधु नहीं किन्तु महाधूर्त्त मायाचारी इन्द्रियोंका विषय भोगनेवाला जिनाज्ञाका चोर गुरुकुलवास विना तुम्हारी खुशामदसे तुम्हारी आत्माको डुवानेवाला और तुम्हारे मनको राजी रखनेके वास्ते अपना स्वार्थ-सिद्ध अर्थात् पोथी पन्ना लेने वा अच्छे २ माल खानेके वास्ते कहनेवाला है नतु जिनाज्ञा-आराधक गुरुकुलवास सेवक। क्योंकि इस जगह विचार करना चाहिये कि उसने गुजरातके श्रावकोंके वास्ते कहा कि उनके कुछ कामकाज नहींहै यह कहना उसका महा मूर्खताकाहै क्योंकि देखो क्या गुजरातके श्रावक उसकी तरह भिक्षा मांगके खातेहैं कि जो उनके काम काज नहींहै? सो तो नहीं, परन्तु गुजरातके श्रावक तो धर्मको ऐसा जानतेहैं और दिपातेहैं और हजारों लाखों रुपया खर्चतेहैं किन्तु धर्मके वास्ते प्राणजाय तो जाय पर धर्मको विपरीत करनेकी इच्छा न होय। कदा-

चित् ऐसे गुजराती श्रावक न होते तो तीर्थ आदिकोंकी सारसंभाल होना कठिनथा अथवा इस जैनधर्मकी प्रवृत्तिभी गुजरातसे ही चलतीहै। हां अलबत्ता आत्मारामजी तो ऐसा लिखतेहैं कि वहां के लोग बड़े हठी अर्थात् कदाग्रहीहैं सो जितने जैनमतमें भेद पड़ेहैं उतने गुजरातसे ही निकले। इस मतमतान्तरके भेद होनेसे उनका लिखनाहै परन्तु हमतो कितनीही बातें धर्मकी यथावत् देखनेसे उन लोगोंको धन्यवाद देतेहैं नतु कदाग्रही मतमतान्तरके भेद करनेवाले हठग्राहियोंको ॥ इसलिये भोदेवानुप्रिय ! ऐसे मूर्ख भेषधारीके कहनेसे अविधिमें प्रवृत्ति होनेकी इच्छा मतकरो किन्तु विधि मार्गकी इच्छा करो जिससे तुम्हारा कल्याणहो ॥

**शंका**—आपने कहा सो तो ठीकहै परन्तु हम लोगोंकी भावभक्ति जो होतीहै सो न होगी क्योंकि दिनमें तो चित्त नहीं लगता, रात्रिमें हम लोगों का चित्त मन्दिरमें अच्छी तरहसे लगताहै। इसलिये रात्रिमें दूषण क्याहै ॥

**समाधान**—हेभोलेभाइयो ! इस तुम्हारे कहने से हमको अनुमानसिद्ध होता है कि तुम्हारे भावभक्ति तो नहीं किन्तु तुम को रात्रिमें उसवक्त कुछ काम नहीं इसलिये तुम अपने दिल बहलाने अर्थात् खुशी करने के वास्ते भक्ति का नाम लेकर झांझमंजीरा कूटते हो। जो तुम्हारे भावभक्ति होती तो जिन-आज्ञा को छोड़कर अपनी मनकल्पना को भक्ति क्यों मानलेते ? क्योंकि देखो जो भगवतकी आज्ञा में है उसी को भक्तिभाव है क्योंकि जिसके जीमें जिसका भक्तिभाव होगा उस की आज्ञा आपही अंगीकार करेगा जिसको आज्ञा अंगीकार नहींहै उसके भक्तिभावभी नहीं बनता। और जो तुमने कहा कि रात्रिमें दूषण क्या है सो देखो कि जिनमत में यतना का करना सोही जिनाज्ञा का

सार है सो रात्रिमें यतनानहीं होसके और दूसरी जिनाज्ञा नहीं कि रात्रि में मन्दिर जाना क्योंकि आज्ञामें धर्म है "आणाजुत्तो धम्मो" सो हम इस आणा के मध्ये तो इस पुस्तक के तीसरे प्रकाश में भगवत् की आज्ञा को सिद्धकर आये हैं कि आणा में धर्म है परन्तु तौभी इस जगह एक लौकिक दृष्टान्त देकर दिखाते हैं। देखो अभीके वक्त में अंग्रेज़ लोगों ने ऐसा बन्दोबस्त कर रक्खा है कि बाजारों में सड़कोंपर पेशाब मतकरो झाड़े मत फिरो अथवा बारह पत्थर के भीतर कोई दिशाफरागत न जाने पावे ऐसा उनका हुक्म अर्थात् उनकी आज्ञाहै। परन्तु जो शख्स उनको रोजीना दिनभर में तीनदफा जाकर सलाम करता है और बड़ी भक्ति रखताहै परन्तु जो वह शख्स उनके कानून के बाहर अर्थात् उसजगह दिशा आदिक फिर आवे और उसको कोई पकड़कर लेजायतो कानून के माफिक उसे सजाही होगी, उसका भक्तिभाव और सलाम करना कुछ काम न आया। इसीरीति से इसजगह भी जानना कि जो श्रीवीतराग सर्वज्ञ देव जिनेश्वर भगवान ने कहा है उससे विपरीत करनेवाले को कर्मबन्धहेतु है नतु भक्तिभाव कहकर छूटना। क्योंकि देखो इस लौकि-क राजाआदिके भक्तिभावसे उसका उसविपरीत करनेसे सजाके सिवाय छुटकारा न हुआ इसलिये यहांभी अविधि से धर्मध्यान करना ठीक नहीं है जोतुमने कहा कि दूषण क्या है तो आज्ञा न मानना इसके सिवाय और क्या दूषण होगा ॥

शंका—अजी तुमने युक्ति दीनी सो तो ठीकहै परन्तु कोई आगमका भी प्रमाणहै कि जिसमें रात्रिको मन्दिर जाना निषेध कियाहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! तुझको कुगुरुकी वासना बैठी हुई है इसलिये तोतेकी तरह टेंटें करताहै कि आगममें कहां निषेध कियाहै?

सो हे भोलेभाई ! कुछ बुद्धिसे बिचारकर कि विधि होय तो निषेधभी होय जिसकी विधिही नहींहै उसका निषेध क्योंकर बने ? क्योंकि दीवार हो तो चित्र होगा बिना दीवारके चित्र किस पर होगा क्योंकि केवल आकाशमें चित्र नहीं होता । इसलिये रात्रिकी विधिभी नहीं तो निषेधभी नहीं । जिनाज्ञा प्रमाण यतना करना और विधिसे मन्दिर जाना यही रात्रिका निषेध है ॥

**शंका**—अजी इन तुम्हारी युक्तियों से तो रात्रिको मना करते हो परन्तु मन्दिरमें भक्ति करना नृत्यादिक करना यह सब उठ जायगा तो फिर हरेक जीवको लाभ होनाही बन्द हो जायगा ॥

**समाधान**—अरेभोलेभाई ! कुछ बुद्धिसे बिचारकर केवल कुगुरुके बहकानेसे बुद्धिका विचक्षणपना मत दिखावे । जो तुझको आगमही आगम के प्रमाणकी इच्छा होय तो अब हम तेरेको प्रमाण देतेहैं सो तू अच्छी तरह कान लगाकर सुन । श्रीतपगच्छमें भट्टारिक श्रीहीरविजय सूरिजी महाराजके कियेहुए जो प्रश्नोत्तरहैं उनमें रात्रि को नाटकादि निषेध कियाहै सो उन प्रश्नोत्तरोंमें ऐसा लिखा हुआहै कि "जिनगृहेरात्रौ नाट्यादिर्विधेर्निषेधौ ज्ञायते" ॥ यथोक्तं ॥ "रात्रौन नंदिर्नवलिप्रतिष्ठा । न स्त्रीप्रवेशो न चलास्यकीलेत्यादिकंच" ॥ अब देखो कि इस में खुलासा हैकि "नन्दिर्नवलिप्रतिष्ठानस्त्रीप्रवेशो" आदिका निषेध किया है सो इस प्रमाणसे जो आत्माका कल्याण करना होय तो इस बातको अंगीकारकरके रात्रिमें मन्दिर जायकर जिनअसातना मत करो । हमतो तुम्हारी करुणा करके तुम्हारे उपकारके वास्ते लिखतेहैं आगे करना न करना तो तुम्हारे अख्तियारहै क्योंकि देखो चौकीदार तो रात्रिको ऐसा कहताहै कि " जागते रहो२" परन्तु जागना तो उस घरधनीके अख्तियार है

जागेगा तो उसका माल रहेगा और सोताही रहेगा तो उसका माल जायगा, कुछ जगानेवाले का दूषण नहीं। इसीरीतिसे हमभी जिनोक्त विधि कहतेहैं जो आत्मार्थी करेगा उसका कल्याण होगा और जो हठ कदाग्रह में पड़ाहुआ न करेगा तो उसकाही नुकसान है। इसलिये आत्मार्थीको हठग्राहीपना छोड़करके विधिका अंगीकार करनाही ठीकहै॥

**शंका**—अजी तुमने इस प्रमाणमें स्त्रीआदिकका निषेध किया तो जिन स्त्रियोंका दिनमें फिरना नहीं होता उनको दर्शन करना क्योंकर चनेगा और विना दर्शन करे तो श्राविकाको बने कैसे ? क्योंकि दर्शन न करे तो दण्ड आता है॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! नेत्र मींचकर कुछ बुद्धिसे विचार कर कि देव और गुरु के सामने तो परदा वनताही नहींहै और जो देव और गुरुके सामने परदा करे तो मिथ्यात्व आताहै क्योंकि देखो उस जगह सिवाय साधर्मी के एकभी नहीं दीखता है और साधर्मी से कोई तरह का परदा है नहीं क्योंकि वो तो संसारी नहीं किन्तु परमार्थ का सहाय देनेवाला है। हां अलवत्ता संसार व्यवहार के कृत्यमे जैसी जिस देशमें प्रवृत्तिहो वैसा करना ठीकहै नतु परमार्थ अर्थात् धर्म्मकृत्य में संसारीकृत्य का हठकरना। औरभी देखो कि तुम्हारे जैसे विलक्षण बुद्धिवाले उन आचार्यों वा सर्वज्ञों के सामने नहीं हुए जो ऐसे२ संसारीकृत्योंको धर्मके कृत्योंमें फंसायकर ऐसे प्रश्न करते और तुम्हारे कहनेसे ऐसीभी प्रतीति होतीहै कि उन सर्वज्ञोंमें इतना उपयोग न हुआ कि आगेके कालमें ऐसे२ श्रावक श्राविका होंगे कि जिनके वास्ते रात्रिमें मन्दिर जानेकी विधि कहजांय क्योंकि नहीं तो मेरे शुद्धपरूपकों से अर्थात् शुद्धविधिकरनेवालों से वे कुगुरुके वहकायेहुए मूढ़मति नामके श्रावक उपजीविकाके

करनेवाले धूमधाम करनेके वास्ते कदाग्रह करेंगे, सो तो नहीं किन्तु बीतराग सर्वज्ञ देव ने तो आत्मार्थी भव्यजीवके वास्ते विधि परूपना की है । अब देखो रात्रिमें जो स्त्री वा पुरुष मन्दिरमें जाते हैं उनका दूषण दिखातेहैं कि देखो जब चार पांच बजे मन्दिरमें जातेहैं तब वे मन्दिरके कारबारी मन्दिरका दर्वाजा खोलतेहैं उस वक्त कोई तरहकी जैना नहीं होसक्ती क्योंकि वे कारबारी लोग अपनी नौकरीके वास्ते रहतेहैं धर्ममें नहीं समझते इसलिये वे लोग झड़ाकेसे किवाड़ खोलतेहैं उस वक्त उन किवाड़ोंके वा चौखटके बीचमें आनेसे अनेक जीवोंकी हिंसाभी होजातीहै । और दूसरा जिस वक्त वे मन्दिरमें जायकर घंटा बजातेहैं उस वक्त टननननन इस रीतिकी आवाज होनेसे प्रथम तो मन्दिर में छिपकली आदिक जानवर चौंक पड़तेहैं, और जीवादिककी हिंसा करतेहैं और कपोतादि जानवरभी भड़क उठतेहैं कि क्या हुआ ? तीसरा मन्दिरके आसपासके गृहस्थी लोग जाग उठतेहैं और अपने घरकों को जगातेहैं कि अब सवेरा होगया लोग मन्दिरोंमें दर्शनको आनेलगे सो वे लोग अपना पीसनाकूटना इत्यादिक अनेक संसारी काम करतेहैं और कितनेही स्त्रीपुरुषादि थोड़ी रात जानकर उठतेहैं और अनेक तरहके व्यभिचारादि कृत्य करतेहैं । इसलिये अब विचार करना चाहिये कि यह रात्रि के वक्त में मन्दिर जाना अनेक अनर्थोंका हेतु हुआ इसलिये जिनोक्त विधि से दिनमेंही मन्दिरमें जाना ठीकहै । विशेष विधितो "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" में देखने को हम पेश्तर लिखआयेहैं परन्तु किंचित् जिज्ञासु के वास्ते प्रक्रिया दिखानेके वास्ते बतौर पीठिकाके पूजनादिकी विधि लिखतेहैं नतु मंत्रादि संयुक्त । श्रावक प्रथम निस्सीही कहनेके अनन्तर उष्ण जल लेकर पश्चिम मुख करके मुख धोवे अर्थात् दांतन

करके मुख को साफ करे। यहां कितनेही मनुष्य ऐसी शंका करतेहैं कि नोकारसी पोरसी आदिक पचक्खान क्योंकर निभेगा ? इसलिये विना दांतन करे स्नानकरके पूजन करेतो कुछ हर्ज नहीं। उसको समझाने के वास्ते कहतेहैं कि प्रातःकाल सवेरे के वक्तमें तो वासक्षेप पूजन कहा है नतु प्रक्षाल आदि। इसको क्यों मनाकिया सो कारण कहतेहैं कि सवेरेसे लेकर पहरभर दिन चढ़े तक अनेक श्रावक श्राविका भावितात्मा प्रभुका दर्शन चैत्यवन्दन आदि कृत्य करनेके वास्ते आतेहैं उस वक्तमें प्रक्षालादि कृत्य होने से उन भावितात्माओं को प्रभुका मुखारविन्दादि शान्तरूप अवलोकन न होसकेगा और उस वक्तमें जो पूजन करनेवालाहै उसको, आड़ा होनेसे दर्शन करनेवाले की असातना लगेगी क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा कहा है कि जो दर्शन अथवा चैत्यवन्दनादि कररहाहै उस भावितात्मा और प्रभुके आड़ा होकर अर्थात् उनके बीचमें होकर न निकले। तो फिर कोई शख्स पूजन कररहाहै उस वक्त जो चैत्यवन्दन करनेवालेहैं उनको प्रभुतो अङ्गोपाङ्ग सहित नहीं दीखैंहैं पूजन करनेवालेकी पीठ या पीछेके काले बाल दीखते हैं अथवा कोई ड्यौढ़ा होकर बैठे तौभी प्रभुका यथावत् स्वरूप नहीं दीखता है इसलिये उस वक्त जो पूजन करनेवालेहैं उनको दर्शन करनेवालोंके अंतराय (विघ्न) सिवाय कोई लाभ नहीं किन्तु असातना से कर्मवन्धहेतु है। इसलिये शास्त्रों में प्रक्षालादि द्वितीय पूजन दुपहर अर्थात् १२ बजे के भीतर कहाहै तो नोकारसी पोरसी आदिक पचक्खानमें कोई दूषण नहीं बल्कि तिविहार उपवास आदिकमेंभी कोई दूषण नहीं क्योंकि उष्ण जलसे दांतन स्नानआदि करनाहै। इसलिये प्रथम मुखशुद्धकरे, जब तक मुखशुद्धिही नहीं करे तबतक पूजा करनाही

और आधी ओढ़ते हैं इसरीति से जो पूजन करनेवाले हैं सो भाव भक्ति वाले तो नहीं हैं किन्तु लोगोंको दिखाने के लिये पूजन करनेवाले बनते हैं और ओसवालों के घर में जन्म लेके जैनी नाम धराय कर जन्मपत्रीकी विधि तो मिलाते हैं कि हमभी सेठ हैं क्योंकि मुफ्तका पानी मिला और मुफ्त की केसर चन्दन मिले जिसके तिलकसे चहराभी अच्छा दीखनेलगा और मन्दिरके दोचार आदमियों पर हुक्मभी चला, इसरीति से जन्मपत्रीका जोग सधा कि ओसवालके घरमें जन्मलेने का फल मिला परन्तु इत्यादिक बातोंके करनेसे सिवाय कर्मबन्ध हेतु के लाभ नहीं इसीलिये इस जैनमतमें ऐसी २ रीति कुगुरुके भ्रमाये हुए कदाग्रही मूढ़मती हठग्राहियोंनेही श्रीसङ्घकी हानि की क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि देवगुरुकी असातना होनेसे श्रीसंघमें हानि है इसलिये श्रीसंघमें वृद्धि नहीं होती है ॥

**शंका**—अजी प्रथमतो तुमने पूर्व पश्चिम आदि दिशिके वास्ते कहा उसका कारण क्या है और दूसरा वर्त्तमान कालमें जो प्रवृत्ति मार्ग है सो तो बिलकुल उठजाताहै तब व्यवहारके बिना मार्ग क्योंकर चलेगा ? सो व्यवहारका उठाना ठीक नहीं है। तुम्हारा कहना तो हमको निश्चय मालूम होताहै ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! जो दिशि के मध्ये प्रश्नकिया उसका तो उत्तर यहहै कि बिना प्रयोजन जो पामर पुरुषहैं उनकीभी प्रवृत्ति नहीं होतीहै तो श्रीअर्हन्तभगवन्त बीतराग सर्वज्ञ देवकी वाणी क्यों निष्प्रयोजन होगी ? परन्तु इस प्रयोजन केलिये सत्पुरुष आत्मार्थी शुद्ध परूपककी चरण सेवाकरो तो वह सत्पुरुष पात्रकी परीक्षाकरके आपही बतलायदेगा नतु पूछनेका कामहै। औरजो तुमने कहा कि

प्रवृत्ति मार्ग व्यवहार उठ जायगा तिसका उत्तर यहहै कि प्रवृत्ति व्यवहार मार्ग तुम्हारी मनोकल्पनाका जो चलरहाहै सो उठेगा या अर्हन्त भगवन्त वीतरागका व्यवहार उठजायगा? जो कहो कि हमारा वर्त्तमानकालका प्रवृत्ति मार्ग उठताहै तो हमने तो श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव का धर्म अंगीकार कियाहै नतु तुम लोगोंकी मनोकल्पना का व्यवहार। हमारीतो प्रतिज्ञा ऐसीहै कि श्रीवीतराग की वाणीसे व्यवहारकाही वर्णन करें। हां अलबत्ता व्यवहारके भेदोंका विशेष करके वर्णनहै सो अभीतो हमने शुद्ध व्यवहारको किंचित्भी नहीं कहा किन्तु शुभ व्यवहारकाही वर्णन कियाहै और प्रायः करके इसग्रंथमें शुभ व्यवहारकाही वर्णन विशेष करके होगा और शुद्धव्यवहारका वर्णन तो "द्रव्यअनुभवरत्नाकर" में किंचित् कियाहै सो कदाचित् उसको सुनो तो तुम्हारा क्या हालहो! अभीतो शुभ व्यवहारकोही निश्चय समझ लिया सो निश्चयकाभी वर्णन उस शुद्ध व्यवहारवाले ग्रंथमें कहाहै कि निश्चय कुछ पदार्थ नहीं है इसकी विशेष चर्चा वहां देखलेना। अब किंचित् औरभी सुनो। देखो तुमलोग अपनेको जिनधर्मी बनाकर बहुत उत्तम अर्थात् श्रेष्ठ समझतेहो और अन्यमती लोगोंको मिथ्याती अर्थात् बहुत नीच समझते हो तो जब तुम्हारा और उनका कृत्य एकसा है तो फिर उनको मिथ्याती कहना और अपनेको समगति कहना क्यों कर बनेगा? क्योंकि उन लोगोंको मिथ्याती इसीलिये कहतेहैं कि वे लोग विधि अविधि, साध्य साधन, कारण कार्यको नहीं जानकर केवल न्हानाधोना माल उड़ाना और झांझ मजीरा कूटना नाचनाकूदना खूब गालबजाना गाना रागरागिनी काढना इसी को धर्म जानकर ईश्वरभक्तिका नाम लेकर इन्द्रियसुख भोगतेहैं और शृंगारआदि करतेहैं

न करनेसे तो करना अच्छाहीहै। देखो जिसको गेहूं चांवल न मिले तो क्या मोठबाजरी खाकर पेट न भरे ? और जो एकान्त इसी वातको थापोगे तो आपकोभी तो लोग साधु कहतेहैं तो आप कौनसी सर्व विधिसेही क्रिया करतेहो ? इसलिये जो लोग करतेहैं जिस रीतिसे वे चलें उसी रीतिसे चलना चाहिये क्योंकि जो बहुतजने करतेहैं सो अच्छा ही करते होंगे। क्या आपकी बराबर आगेके लोगोंमें बुद्धि नहींथी ? सोतो नहीं, किन्तु पहलेके लोग तो विशेष बुद्धिमान थे ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! तुमनेकहा कि वीतरागके मार्गमें उत्सर्ग और अपवादहै और ये दोनोंही भगवानकी आज्ञामें हैं सोतो हमभी अंगीकार करतेहैं परन्तु उत्सर्ग अपवाद समझो तो सही कि उत्सर्ग क्याचीजहै और अपवाद क्या चीजहै सोही हम तुमको दिखाते हैं। उत्सर्गमार्गको रखनेके वास्ते अर्थात् सहाय देनेके ताईं प्रभुने अपवाद मार्ग कहा है जैसे कोई एक तिबारी बनी हुईहै उसकी छतमें पत्थर की पट्टी लगी हुई है उस छतकी पट्टियोंमें से बीचकी पट्टी जर्जरी अर्थात टूटगई अब उस तिबारीकी और पट्टियां न टूटनेके वास्ते बीच में दोस्तम्भ खड़ेकिये और उस टूटीहुई पट्टीके निकालनेका और दूसरी साबित पट्टी रखनेका यत्न करनेलगे। जबतक यह पट्टी वहां लगकर छत ज्योंकीत्यों न होजाय तबतक तो वे स्तंभ बीचमें लगेरहे परन्तु जब छत दुरुस्त होगई तब उन स्तम्भोंको उस तिबारीके बीचमें कोई बुद्धिमान नहीं रखसक्ताहै किन्तु उन स्तम्भोंको मकानकी शोभा और जगह खाली करनेके वास्ते उठाही देताहै। दूसरा दृष्टान्तसुनो एकसड़क है जिस पर गाड़ी घोड़ा हाथी ऊंट आदि वेधड़क चलेजातेहैं जिसमें कोई तरहका खटका नहीं है परन्तु उस सड़कमें एक खाड़ा (गड्ढा)

होगया सो उस को दुरुस्त करनेवालोंने कुछ हटाकर गाड़ी आदिके नि-
कलनेके वास्ते मार्गकरदिया तो लोग उधर होके जाने लगे। जब वह
सड़क ज्योंकीत्यों बनगई तब उस सड़क को छोड़ कर फिर कोई उस नये
निकाले हुए रास्ते से न जायगा किन्तु सीधी सड़क परही जायगा। इन
दृष्टान्तों का सार यहीहै कि जो श्रीभगवतने उत्सर्ग मार्ग कहाहै उस
मार्गमें चलनेवाले जो भव्य जीवहैं उनमें से कोई भावित आत्मा कर्म
उदयके जोरसे परणामकी चंचलतासे और शरीरादिकमें कोई कारण
होनेसे अपवादमार्गको अङ्गीकार करके अतिचार आदि लगावे परन्तु
शरीरादिके कारण मिटनेसे और परणाम की स्थिरता होनेसे फिर
उत्सर्गमार्गमें चले। क्योंकि देखो तिवारीकी पट्टी अच्छी होतेही स्तम्भ
निकाललियेगये और सड़कका खाड़ा बुरनेके बाद गाड़ीघोड़ादि सीधी
सड़क पर जानेआने लगे। इस रीति से जो आत्मार्थी हैं वे अपवाद
मार्ग कारणसे ग्रहण करके फिर इस कारण रूपी अपवादको छोड़कर
कार्यरूपी उत्सर्ग पर चलें। इसरीतिसे तो उत्सर्ग अपवाद भगवत-आज्ञा
में है परन्तु तुम्हारे जैसा कि खूब मसल२ कर स्नान करना और
मन्दिर में खूब कांच कांगस्या करना, बालों को संवारना, डाढ़ी
मूंछ को जुदी२ बांधना, खूब संवार२ के केसर का तिलक करना
और जिस धोतीसे स्त्रीसंगादि सब कामकरना उसी धोतीको आधी
पहरना और आधीका उत्तरासन करना और भगवत—असातनादिको
न देखना इत्यादि तुम्हारा कृत्य अपवादमें नहीं किन्तु अनाचारमें है।
और जो तुमको इसी उत्सर्ग और अपवादका विशेष करके निर्णय देखना
होय तो हमारे किये हुए "शुद्धदेव अनुभव विचार" में सत्तावन बोल
श्रीवीतराग देव पर उतारे हैं उन सत्तावनबोलों में हेय, ज्ञेय, उपादेय,

बीजोंके नशेमें ऐसे व्याकुल होकर पड़ोगे कि फिर किसी तरहकी सुधि ही न रहैगी इसलिये हे भोलेभाइयो ! हमतो तुम्हारे हितके वास्ते कहतेहैं कि जिसमें तुम्हारा कल्याणहो नतु रागद्वेषसे । और जो तुमने कहा कि जो इस बातको एकान्त थापोगे तो आपकोभी तो लोग साधु कहतेहैं सो आप कौनसी सर्व विधि सेही क्रिया करतेहो इस तुम्हारे कहनेकाभी उत्तर देतेहैं हमारेतो एकान्त थापना नहींहै किन्तुजो भगवत-आज्ञा है उसको तो हम एकान्तही थापते हैं क्योंकि भगवत की आज्ञामें धर्महै सो हम भगवत आज्ञासे युक्त उत्सर्ग अपवाद लिख कर सब समझाते चले आतेहैं फिर तुम एकान्त क्यों कहतेहो । और मुझे लोग जो साधु कहतेहैं इसका तो मैं क्या करूं सो मेरा जैसा कुछ हाल विधि अविधि है सो तो "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" के पांचवें प्रश्नोत्तरमें लिखाहै और किंचित् हाल इसी ग्रंथके तीसरे प्रकाशमें लिखा है इसीलिये मैं यथावत् साधुनहीं बनता क्योंकि मुझे मेरा कृत्य दीखता है। और मेरे परणामकी धाराभी ज्ञानी जानताहै या मेरी आत्मा जानती है परन्तु व्यवहारसे तो मैंने जिन-लिंग लियाहै सो इस लिंगसे भांड चेष्टा करताहुआ इस शरीरका निर्वाह करताहूं अर्थात् भिक्षा मांगकर खाताहूं न मैं इधरका हूं न उधरका, लाचारहूं, अफसोस करताहूं कि मेरी क्या गति होगी ! परन्तु मुझे इतनाही आसराहै कि जिस मूजिब मैंने त्याग कियाहै उसी मूजिब द्रव्य,क्षेत्र, काल, भाव, अपेक्षासे अपना निर्वाह करताहूं और श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवका जो वचनहै उसको मेरी बुद्धि के अनुसार निर्भय होकर कहताहूं और किसी के ममत्वभावमें नहीं फंसताहूं क्योंकि मैं गृहस्थीपनमें महा मिथ्यात्वमें पड़ाहुआ स्वामी संन्यासियोंकी सोहबत और सातों कुव्यसनका सेवनेवाला था और जैनमत

का मेरेमें लेशभी नथा परन्तु शुभ कर्मके उदयसे किंचित् ढूंढियोंकी सोहबत पायकर किंचित् जैनधर्मको जाना। फिर जिन-प्रतिमाकी आस्था होने से तेरहपन्थी दिगम्बर बना फिर उसकोभी पक्षपाती जाना तब दिगम्बरी बीसपन्थीका मत अंगीकार किया। फिर उसमेंभी पक्षपात देखी तब पीछे फिर श्वेताम्बरका मत मानने लगा। इसरीतिसे तो मेराहाल गृहस्थीपनेमें रहा फिर शुभकर्मके उदयसे गृहस्थीपना छूटा तो कुछ दिनतक ओघामुंहपत्तीकेविना लंगोटी लगाये अवधूतकी तरह अनेक तरहके मत मतान्तरके पंथाइयोंको देखता फिरा परन्तु सच्चे जिनमतकी आस्था दिन२ बढ़तीही गई सो वह आस्था तो मेरे आत्मामेंहै सो ज्ञानी जानता है परन्तु जिस वास्ते मैंने इसलिंगको ग्रहण कियाथा सो मेरा काम यथावत् न हुआ क्योंकि इस जैनमतमें नानाप्रकारके भेद होनेसे और दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालोंके कदाग्रहसे ऐसा होगया कि "दोनों खोईरे जोगड़ा मुद्रा और आदेस" और ऐसाभी हुआकि "आहके करनेसे हौलदिल पैदाहुआ, एकतो इज्जत गई दूजा न सौदा हुआ"। इस लिये मैंतो मेरेमें यथावत् साधुपना नहीं मानताहूं अलबत्ता वीतरागका जो वचनहै सो मेरीबुद्धि के अनुसार यथावत् कहूंगा औरजो मेरीबुद्धिमें न आवेगा उसको जोकोई पूछेगा उसको मैं साफ कहदूंगाकि भाई मुझको इसबातकी खबरनहींहै इसलिये मैं इसमें कुछनहीं कहसक्ता। औरजो तुमने कहाकि जोलोग करतेहैं उस रीतिसे चलना चाहिये क्योंकि बहुतजने करतेहैं सो अच्छाही करतेहोंगे। यह कहनाभी तुम्हारा बहुत बेसमझका है क्योंकि देखो बहुतजने करतेहोंगे सो समझकरही करते होंगे तो बहुतजनोंकी देखादेखी करोतो अनार्य देशमें अनार्यजन बहुत हैं अथवा इस आर्यदेशमें मिथ्यात्वी बहुतहैं और जैनी थोड़ेहैं तो उन-

हमारी भव्यजीवोंसे यही शिक्षाहै अर्थात् यही उपदेशहैकि विधि सहित श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके वचनको अंगीकारकरो, जिससे मुक्तिपद जाय वरो, फिर कुगुरुकासंग कभी न करो, मिथ्यातको परिहरो, क्यों नाहक झगड़ेमेंपड़ो, संसारके जन्म मरणसे डरो,हमारी इस शिक्षाको हृदयमेंधरो, अब तुम सत्यगुरुकी चरणसेवाकरो। इसरीतिसे जिनमन्दिरमें चैत्यवन्दन वापूजा अविधिका निषेधकर विधिको अंगीकारकरके भव्यजीवोंको अपनी आत्माका कल्याणकरना चाहिये। इसरीतिसे मन्दिरजीकी किंचित विधि कही ॥

अब तीर्थयात्रा करनेकी विधि भव्यजीवोंकेवास्ते कहतेहैं सो सुनो। प्रथमतो तीर्थशब्दका अर्थ करतेहैंकि तीर्थ क्या चीजहै तीर्थ शब्दकी धातु कहतेहैंकि "तृपलवनतर्णयो" इस धातुका तीर्थशब्द बनताहै इस का अर्थ क्या हुआकि"तारयेतिइतितीर्थ" जो तारे उसकानाम तीर्थहैसो तीर्थ दो प्रकार का है एकतो जंगम दूसरा स्थावर। सो जंगम तीर्थ में तो आचार्य उपाध्याय साधु आदि हैं क्योंकि वेभी उपदेशसे ज्ञानकराय कर साक्षात् मोक्ष मार्गको बतलाते हैं और जन्म मरण मिटाते हैं और संसार रूपी जो समुद्र है उसमें से तारकर मोक्ष में पहुंचाते हैं इसलिये वे तारनेवाले हुए सो उनको जंगम तीर्थ कहते हैं। अब दूसरा स्थावर तीर्थ सुनो कि श्री सिद्धाचलजी गिरनारजी शिखरजी आदि तीर्थ हैं अथवा जहां तीर्थंकरों की जन्मभूमि अथवा दीक्षाभूमि, केवल ज्ञान उत्पन्न वा निर्वाण भूमि आदिक अनेक तीर्थ हैं सो जिस २ जगह भगवान का कल्याण होता है वह भूमि सब तीर्थ रूपी है उन तीर्थों में जाय कर यात्रा करना। वह यात्रा भव्य जीवों को कल्याणकारी है इसलिये ये स्थावर तीर्थ हैं ॥

शंका–अजी आपने आचार्य आदिक जंगम तीर्थ कहे सो तो ठीक है. परन्तु भूमि पर्वत आदिकों को तीर्थ कहे सो वे कैसे तारें ? क्यों कि वे आप ही जंगमरूप अज्ञान में हैं सो उनको तीर्थ कहना किस रीति से बनेगा ?

समाधान–भोदेवानुप्रिय हमको मालूम होताहै कि तेरे को किसी आर्यसमाजी वा ढूंढिया तेरहपन्थी अथवा दादूपन्थी कबीर पन्थी आदिक पंथाइयों का संग होकर अज्ञानरूपपवन का झपट्टा लगा है क्योंकि वे लोग शास्त्र का रहस्य तो समझते नहीं केवल मनोकल्पनासे हटकदाग्रह करतेहैं सो उनका अज्ञान दूरकरने को और तेरा सन्देह मिटानेके वास्ते शास्त्रानुसार युक्ति कहतेहैं उस को सुन। कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती इसलिये कारण अवश्यमेव होगा और कारण उसीको कहेंगे कि जो कार्य उत्पन्न करे और जिससे कार्य न होय वह कारण नहीं। तो इस जगह विचार करो कि श्रीसिद्धाचलजी श्रीगिरनारजी श्रीआबूजी आदिक तीर्थ सत्य कारण हैं सो इनकी सत्यता दिखातेहैं । किसी सत्पुरुष ने उपदेश दिया कि आत्माका कल्याण करो तब जिज्ञासु पूछनेलगा कि महाराज ! आत्माका कल्याण किस रीतिसे होवे सो कहो ? तब उपदेशदाता कहने लगा कि भोदेवानुप्रिय भावसे भगवत की भक्तिरूपस्मर्ण करके एकान्तमें अपने आत्मस्वरूप को विचारो। जब वह जिज्ञासु कहने लगा कि महाराज मैंतो पुत्रकलत्रादि संसार के अनेक हेतुओं में फंसा हुआ बैठाहूं सो मुझसे तो एकान्त बैठकर कुछनहीं होसक्ता। जब वह उपदेश दाता कहनेलगा कि भोदेवानुप्रिय! शास्त्रों में ऐसा कहाहै कि श्रीसि-द्धाचलजी आदिक तीर्थों पर जाय और उस भूमिको स्पर्शकरे और ई-

श्वर—भक्ति से अपने आत्मस्वरूपका विचार करे तो जल्दी कल्याण हो। इस वाक्यको सुनकर आत्मार्थी भव्यजीवको इच्छा हुई कि मैं तीर्थयात्रा करूं जिससे मेरा कल्याण हो क्योंकि इस जगहतो पुत्र कलत्रादिकोंके जाल में फंसाहुआ जन्मभरमें भी शुभकृत्य न करसकूंगा परन्तु तीर्थमें दोचार मास लगेंगे तो उतनाही लाभ होगा। ऐसा विचार करके घरसे निकला और तीर्थके जानेआनेमें उसको दो चार महीने लगे उन दो चार महीनोंमें झूट, कपट, छल, रागद्वेष आदि संसारी कृत्यसे निवृत्त हुआ और जबतक यात्रा करके घर न आया तबतक धर्मादि कृत्यकोही करता रहा। सो यात्राकी विधि तो हम-नीचे लिखेंगे परन्तु इस जगह प्रसंगागत कारण को सिद्ध करनेके वास्ते युक्ति दिखाईहै। सो अब विचार करोकि वह तीर्थ स्थापन न होता तो संसारीकृत्यका छूटना और धर्मादिक कृत्यका करना निरंतर दो चार महीने तक नहीं बनता इसलिये दोचार महीने धर्मध्यान का करानेवाला वह तीर्थ ठहरा इस हेतुसे वह स्थावरभी तीर्थही सिद्ध होगया। इसलिये वहभी तारनेवालाहीहै इस हेतु वा युक्तिसे श्रीसिद्धाचलजी श्रीगिरनारजी श्रीआबूजी आदिक तीर्थ सिद्ध होगये। अब आत्मार्थी भव्य जीव हैं उनको इन तीर्थोंकी यात्रा करके अपना जन्म सफल करना आवश्यकही ठहरा तो अब उन भव्य जीवोंके वास्ते शास्त्रोक्त विधि कहतेहैं कि जो भव्य जीव आत्मार्थी तीर्थ करने को जाय वह शास्त्रोक्त विधिसे ६ 'री' पालता जाय। उन ६ 'री' का स्वरूप दिखातेहैं। कि प्रथमतो 'पगचारी' अर्थात् यात्रा करनेवाला पगों से चले किसी सवारी पर न बैठे, यहतो प्रथम 'री'का अर्थ हुआ। दूसरा 'दोनों वक्त प्रतिक्रमणकारी' कोई इस जगह ऐसाभी कहतेहैं कि

'व्रतधारी' और कोई ऐसाभी कहतेहैं कि 'समकितधारी' इन तीनोंका अर्थ ऐसाहै कि 'दोनों वक्त प्रतिक्रमणकारी' कहनेसे तो दोनों टंक प्रतिक्रमण करे अर्थात् रात्रिकी आलोयणा तो सवेरेके प्रतिक्रमणमें करे और दिनभरकी आलोयणा संध्याके प्रतिक्रमणमें करे। और जहां व्रतधारी कहाहै उस'री'का अर्थ यहहै कि१२व्रतमेंसे जैसा जिसकी खुशी होय उसी तरहके व्रत का धारणकरनेवालाहो और जिस जगह समकित अंगीकार करे उस समकितधारीकी तो यात्रा सबसे उत्तमहै परन्तु उस समकितकी खबरतो ज्ञानीहीको मालूम पड़े परन्तु इस जगह हम शुभव्यवहारका वर्णन करतेहुए शुद्धव्यवहारकी प्राप्ति होनेकी इच्छासे कहरहेहैं। तीसरी'री'को कहतेहैं कि सचित परिहारी इस 'री' के कहनेसे यह अभिप्राय है कि यात्राकरनेवाला सचित (कच्ची) वस्तु न खाय। अब चौथी 'री' कहतेहैं कि 'एकत्र आहारी' इस 'री' का अर्थ यह है कि यात्रा करनेवालेको दिन रात में एक दफा आहार अर्थात् भोजन करना दसरी दफा न खाना। परन्तु इस जगह रात्रिमें भोजन नहीं किन्तु दिनमेंही करना। अब पाचवीं 'री' कहतेहैं कि 'ब्रह्मचारी' इस 'री' का प्रयोजन ऐसाहै कि स्वस्त्रीका भी त्यागकरे अर्थात् स्त्रीसे विषय नकरे। अब छठी 'री' कहतेहैं कि भूमीसंथारी इस 'री' का यह प्रयोजनहै कि भूमी अर्थात जमीन पर सोवे इसरीतिसे ६'री' पालता हुआ यात्राकरने को जाय इसरीतिसे भव्य जीव यात्राकरे उसीके ताई सर्वज्ञदेवने यात्राका यथावत फल कहाहै। अब यहां कोई ऐसी शंका करे कि छे 'री' कहनेका प्रयोजन क्याहै और इन छे'री' पालनेसे विशेष लाभ क्याहै इस सन्देहको दूर करने के वास्ते मेरी बुद्धिके अनुसार छे 'री' पालनेका अभिप्राय कहताहूं

सो सुनो। प्रथम जो पगचारी कहा इस 'री' का तात्पर्य यहहै कि जब पैदल चलेगा तो जमीनको देखता हुआ नीची निगाहसे कीड़ीमकोड़ी आदिक बचाताहुआ रस्तेमें जैना से चलेगा और जोपुरुष जमीनको जैना से देखताहुआ चलताहै तो उसको हिंसा आदिक नहीं लगती एकतो यह लाभ। दूसरा जब कि पैदल चलेगा तो ६तथा ७कोस तक जायगा तो रस्तेमें अनेक तरहके गांव नगर आदि आतेहैं उनमें श्रीजिनराजके चैत्य अर्थात् मन्दिरों की भक्ति और देव दर्शन जगह२ का होना अथवा जगह २ के साधर्मियोंसे मिलना और उनसे अनेक तरह की धर्मविषयमें भावभक्ति से प्रीतिका बढ़ाना क्योंकि साधर्मीका संग होना कठिनहै। तीसरा और सुनो कि जो पैदल चलने वालाहै उसको आत्मार्थी भाविक आत्मा प्रणिति धर्मके जाननेवाले साधु अक्सर करके जंगल झाडी पहाड़ आदिमें रहते हुए तिनका उस भव्यजीवको दर्शन होजाय अथवा वे साधुमुनिराज गांव नगरआदिक में आहार लेनेको आवें उस वक्तमें उनका दर्शन होजाय अथवा वे साधु लोग किसी गांवनगरमें भव्यजीवोंको देशना देतेहुए मिलें इस रीतिसे उन मुनिमहाराजों को शुद्धआहार आदिकभी देनेमें आवे इत्यादि अनेकलाभोंका कारण पैदल चलनेवाले भव्यजीवोंको प्राप्तहोताहै इसलिये पगचारी कहा। अबदूसरी 'री' का स्वरूप कहते हैं कि जो दोनों वक्त प्रतिक्रमण करनेवालाहै उसके हालतो जो पहली छै 'री' में कहीहुई रीतिसे कोई तरहका संसारी दूषण लगताही नहीं और जो किंचित दूषणादि लगताहै सो प्रतिक्रमण करनेसे रोजका रोज शुद्ध होजाताहै सो प्रतिक्रमण की रीतितो हम छठे प्रकाशमें कहेंगे वहां से यथावत जानलेना। अथवा प्रतिक्रमण नहीं करसके तो व्रतधारीहो

अथवा 'समकितधारीहो'। अब तीसरी 'री' का स्वरूप कहतेहैं कि 'सचित् परिहारी' कहने का प्रयोजन यहीहै, कि हरीलीलोती आदि कुछ भक्षण नकरे क्योंकि सचित् वस्तु से इन्द्रियां पुष्ट होतीहैं और जोइन्द्रियां पुष्ट होंगी तो मनकी चंचलताभी होगी जब मनकी चंचलता होगी तो विषयमें चित्त जायगा और धर्म्ममें नहीं रहेगा। इसलिये सर्वज्ञदेवने इन्द्रियां प्रबल नहोने के वास्ते सचित का परिहार कहाहै। अब चौथी 'री' का स्वरूप कहतेहैं देखो 'एकलआहारी' अर्थात एक दफाभोजन करने का यही अभिप्रायहै कि एकतो भोजन करनेवाले को अजीर्ण नहीं होता और आलस्य भी नहीं होताहै और चित्तभी शान्त रहताहै और दूसरीदफा रसोई करनेकाभी आरमसारम नहीं रहता और एक दफा भोजन करनेवालेको आठ पहर धर्मक्रिया करनेमें फुर्सत मिलतीहै। इसलिये श्रीअरिहन्त भगवन्तने यात्रा करनेवालेको एकदफा आहार करना कहाहै। अब पांचवीं 'री'का स्वरूप कहतेहैं कि ब्रह्मचारी अर्थात स्वस्त्रीसे भी भोग न करे क्योंकि स्त्रीसे विषयकरनाही अनेक अनर्थोंका हेतुहै, और चित्तकी चंचलता करनेवालाहै। जब चित्तकी चंचलता होगी तब यथावत् धर्मध्यानभी न होगा इसलिये जिनेश्वर देवने यात्राकरनेवालेको 'ब्रह्मचारी' कहा। अब छठी 'री'का स्वरूप कहतेहैं कि 'भूमिसंथारी' अर्थात ज़मीनपर सोवे क्योंकि जो ज़मीनपरसोनेवालेहैं उनको निद्रा कम आतीहै क्योंकि ज़मीनमें कड़ापन होता है सो उस कड़ेपनके सबबसे निद्रा कम लेताहै उस निद्रा कमहोनेसे जागना विशेष हुआ। जो पुरुष रात्रिमें जियादा जागतेहैं उनका चित्त प्रायः करके एकत्र होजाता है जब चित्तकी एकाग्रता होगी तो धर्म ध्यानभी विशेषही होगा। इसलिये जगतगुरु जगबन्धु जगन्नाथने भ-

व्यजीवोंको तारनेके वास्ते यात्रीको भूमिपर शयन करना कहाहै। इस रीतिसे इस जगह इन छै 'री'का स्वरूप कहा सो भव्यजीव आत्मार्थी विधिसहित तीर्थोंकी यात्राकरके अपना जन्म सफल करें॥

**शंका**—आपने जो यात्राकी विधिका वर्णन किया सो तो शास्त्रानुसार है परन्तु इसरीतिसे अव्रती समकितदृष्टिकी यात्रा तुम्हारी लिखी विधिसे न होगी क्योंकि वह अव्रतीहै तो तुम्हारी कहीहुई 'री' को कैसे पालसकेगा? तब उसकी यात्रा भगवतआज्ञामें कैसे होगी?

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! इस तुम्हारी शंकाका उत्तर ऐसाहै कि प्रथमतो मैंने शास्त्रोंमें विधिथी सो कही दूसरा अव्रती समकितदृष्टि प्रायःकरके ज्ञानीकी दृष्टिमें आतेहैं नतु उनकी समकित हरेकको मालूम होतीहै। और इस जगह व्यवहारसे कथनहै इसलिये यह तुम्हारी शंका बनती नहीं परन्तु इस जगह कथनतो मनुष्यों का है और अव्रती समकितदृष्टि तो प्रायःकरके देवलोकादिमें होतेहैं और मनुष्योंमेंतो कोई२ क्षायकसमकितवाले अव्रती होयं तो उनकी उत्तमता तो ज्ञानी वर्णन करसके और ऐसे उत्तम पुरुषकी यात्राकाभी वर्णन वही करसकेगा। ऐसे अव्रती समकितधारी पुरुषोंकी यात्राकी विधि अविधि कहनेकी सामर्थ नहीं किन्तु ज्ञानी जाने। हां इतना कहसक्तेहैं कि ६'री' न पाले और समकितधारी जो उत्तमपुरुषहैं तो उनकी यात्राभी उत्तमही फलकी देनेवाली होगी आगेतो बहुश्रुत कहै सो ठीक। मेरे इस कहनेमें कुछ आग्रह नहीं, इस कथनमें जो श्रीवीतरागकी आज्ञाविरुद्ध होय तो मैं मिथ्यादुक्कडं देता हूं॥

**शंका**—आपने जो शास्त्रोक्त विधि कही सो तो चौथे कालकी विधि होगी वर्त्तमान काल की तो नहीं क्योंकि जो चौथे आरेमें अवि-

धि करते तो उनको दूषण बहुत होताथा अब तो पंचम काल है सो चौथे आरे केसे संग्रहणादि नहीं हैं इसलिये जो आपने विधि कही सो तो बननी कठिनहै ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! हमने तो इस पंचम कालमें जो शास्त्रहैं उनके अनुसार विधि कहीहै और ये शास्त्र पंचमआरेके अन्ततक रहेंगे अलबत्ता शास्त्रके जाननेवालेगीतार्थ दिनबदिन कम होतेचले जायंगे परन्तु शास्त्रसे आचार्योंने पंचमकालके भव्यजीवोंके वास्तेही विधिलिखीहै। ऐसातो किसी शास्त्रमें लिखाहीनहीं कि जो विधि हम कहते हैं पंचम कालके भव्यजीवोंकेवास्ते नहींहै कदाचित् किसीशास्त्रमें ऐसा लिखा होतो हमकोभी दिखाओ नहींतो तुम्हारी मनोकल्पना और इन्द्रियों के विषय भोग मजा करनेके वास्ते कहनाहै आत्माका अर्थ करनेकी इच्छा तुम्हारी नहीं। और जो तुमने कहाकि अविधिका दूषण चौथे आरे में लगताथा और अभीके कालमें नहींहै यह कहना तुम्हारा वेसमझ का है क्योंकि जो चौथेआरेमें मनुष्यादि जहर खातेथे सो मरतेथे या नहीं तो तुमको कहनाहीपड़ेगा कि जो चौथेआरेमें जहरखातेथे सो तो जरूरमरतेहीथे तो इस पंचमकालमें जो मनुष्य जहरखायगा सो मरेगा कि नहींतो तुमको कहनाही पड़ेगा कि जो जहरखाताहै वह तो मरता हीहै। तो जो जहरखानेसे चौथेआरे पांचवेंआरेमें मरताहै तो अविधिभी बतौर जहरकेही ठहरी तो जो चौथेआरेमें अविधि करनेसे पाप लगता था और पंचमकालमें अविधि करनेसे पापनहीं लगता यह तुम्हारा कहना मनोकल्पित मिथ्याहै। इसलिये अविधि के करनेसे तो सबही दानपूजा व्रतपच्चखाणादि निष्फल हैं ॥

**शंका**—आपने कहासो तो ठीक परन्तु इस वक्तमें कोई पैदल

यात्राकरनेको जातानहीं और दूसरे इस अंगरेजीराजमें रेलके चलने से यात्राकरना सबको सुगम होगया सो यात्रा करनातो अच्छाहीहै ॥

**समाधान**–भो देवानुप्रिय ! तुमने जो कहाकि अबतो कोई उसरीतिसे यात्रा नहीं करताहै सो इसमें तो हमारा कुछ जोर नहीं क्योंकि हमारी कुछ हुकूमतनहीं जो भव्यजीव आत्मार्थी होगा सो तो शास्त्रोक्त विधिसेही यात्रा करेगा और जो तुमने कहाकि अंगरेजी राजमें रेलके होनेसे यात्रा सुगम होगई सो यात्रा तो सुगम होगई किन्तु बम्बई कलकत्ता आदि बड़े२ शहरों की सैर करना भी तो सुगम होगया। देखो यात्राका तो केवल नाम लेतेहैं और कलकत्ता बम्बई आदिकी सैर करनेके वास्ते जातेहैं कि चलो यात्राभी हो जायगी और वेभी नजीकहैं सो देखते आयंगे और उसजगह उम्दा२ वनस्पति भी सस्ते भावकी मिलतीहैं सो खायंगे और कोई सस्ता और लाभकारी सौदाभी खरीदलायंगे कि जिससे खर्चाभी निकलजायगा। इस अपेक्षासे बहुतलोगों ने यात्राको सुगम मानलीहै क्योंकि "आम के आम और गुठलीके दाम" सो इसरीतिकी यात्रातो भगवतकी आज्ञामें नहीं है किन्तु तुम्हारे मनोकल्पितशास्त्रोंमें होय तो न कहें। अजी कुछ बुद्धि से विचारतो करो कि रेलतो गदरके पीछेसे चलीहै और तमाम मुल्कमें फैलती चलीजातीहै सो जब रेल नहींथी तबभी भव्यजीव आत्मार्थी तो यात्राकरतेही थे और विधिभी होतीहीथी परन्तुइस रेलके चलनेसे यात्रा तो नहीं किन्तु धमाधम होरहीहै क्योंकि देखो रेलके होजानेसे लोग तनक२ बातके वास्ते बोल्यारी बोलतेहैं कि मेरी अबकी बीमारी आरामहोजावे तो हेकेसरियानाथ ! हम यत्राकरेंगे। म्हारे पुत्र होगा तो ५ वर्षके बाद चोटी उतरवाऊंगा और आपका दर्शन करूंगा अथवा अबके

म्हारे इस रोज़गारमें पैदा होगी तो नौकारसी आयकर करूंगा अथवा हेकेसरियानाथ ! मैं आपके इतनी केशर चढाऊंगा अथवा जबतक यात्रा नहीं करूंगा तबतक घी या तेल नहीं खाऊंगा इत्यादिक अनेक प्रकार के संसारी कामोंके वास्ते लोग खण लेतेहैं और यात्राको जातेहैं और कितनेही लोग नामतो यात्राका करतेहैं और अपना रोज़गार करते फिरतेहैं इत्यादि अनेक व्यवस्था करके लोगोंने शास्त्रोक्त विधितो मिटादी और अपने मनोकल्पित संसारी कामके वास्ते अथवा कितनेही लोग आजीविकाके वास्ते यात्राका नाम लेकर फिरतेहैं और कितनेही अपनी मानबड़ाई कीर्त्ति लोगोंमें जतानेके वास्ते यात्राको जातेहैं नतु आत्माके अर्थके वास्ते । हा ! इस जैनमतमें कैसी व्यवस्था बिगड़रहीहै कि जैसे मिथ्यात्वीलोग मरनेके समय उसके नातेरिश्तेवाले अथवा उसकी जातिके लोग इकट्ठेहोकर जब उसके प्राण घटघटीमें आवें उस वक्त उससे जबरदस्ती कहके अन्न लाडूपेड़ाआदि पुण्यदान करातेहैं उसी तरहसे इस जैनमतमेंभी होनेलगा । क्याहोने लगाकि जब कोई अत्यन्त बीमार हुआ और बचनेकी आशा न रही तब उसको कहतेहैं कि तू कुछ मन्दिर उपासरेके ताईं कर । उस मरनेके समय उससे जबरदस्ती घीचन्दन थोड़ी बहुत केसर और जो मातबर हुआ तो २–४ रुपया नकद इसरीतिसे मन्दिरोंमें भिजवातेहैं । जब मन्दिरमें घीकेसर पहुंचतीहै तब लोग देखतेहैं कि वह मरनेवालाहै क्योंकि मन्दिरमें चन्दनघी आगया अब कुछ बाकी नरहा । इसरीतिके मनोकल्पित व्यवहार चलायकर उलटी जैनमतकी व्यवस्था बिगाड़कर धर्मकी हीलना करातेहैं । अहो अरिहन्तभगवन्त वीतरागसर्वज्ञदेवका धर्मतो जन्म मरण मिटानेवालाहै उसके दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवाले कुगुरुओंने

और उनके दृष्टिरागवाले गृहस्थियोंने और मिथ्यात्वियोंकी देखादेखी इस जैनधर्ममेंभी संसारी कृत्य प्रचार कररक्खे हैं और जो शास्त्रोंमें आत्मार्थ अथवा जन्ममरण मिटानेके वास्ते विधि कहीहै उसविधिको उठायकर अपनी मनोकल्पित विधियोंको स्थापतेहैं और नाना प्रकारके झगड़े कदाग्रह मचातेहैं। इसलिये हे भव्यप्राणियो! जो तुमको इस जिनमतकी चाहनाहै और अपनी आत्माके कल्याण करनेकी इच्छा हैतो जितनी तुम्हारी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे शक्ति होय उतनाही जिनाज्ञा सहित कृत्य करो जिससे तुम्हारा कल्याणहो नतु लोगोंकी देखादेखी अथवा मानबड़ाईके वास्ते करनेसे फलहै। इसरीतिसे किंचित् यात्राकरनेकी विधि कही, विशेष दिनकृत्य श्राद्धविधिआदि ग्रंथों से जानलेना॥

अब भव्यजीवोंके वास्ते स्वामीवत्सलकी विधि अथवा स्वामी वत्सल शब्दका जो अर्थहै सो लिखतेहैं। प्रथम स्वामीवत्सल शब्दका अर्थ ऐसा होताहै कि स्वामी कहिये साधर्मी उसकी जो वत्सलता कहते सहायता देना उसका नाम स्वामीवत्सलहै। अब साधर्मीका अर्थ करतेहैं कि सरीसी (समान) क्रिया और श्रद्धाहै जिसकी उसका नाम साधर्मी है और जिन पुरुषों की एकसमाचारीहो अर्थात् धर्मकृत्य में कोई तरहका भिन्नपना नहीं अर्थात् उसक्रियामें और क्रियाकी जो विधि अर्थात समायक प्रतिक्रमण व्रत पचक्खाणादि उनके करनेमें वा उच्चारनेमें कानामात्रकाभी फर्क नहीं ऐसी क्रियाआदि पर जो विश्वासहै जिन्होंका इसरीतिकी समुदायका जो मिलन उनहीका नाम साधर्मीहै जैसे देखो श्रीवर्द्धमानस्वामीके १५९००० श्रावक और ३१८००० श्राविकाथीं परन्तु इनसबोंकी श्रद्धा अर्थात् विश्वास और

क्रियामें कोई तरहका फर्क नहींथा ऐसी जो समुदायके लोग वे आपसमें साधर्मी हैं नतु भिन्न श्रद्धा वा भिन्न समाचारीवालोंका साधर्मीपना। वत्सलता अर्थात् सहायतादेना उसका अर्थ करतेहैं कि कोई श्रावक अशुभ कर्मके उदयसे धन करके हीन बहु परवारीहै सो आजीविका के वश करके उससे यथावत धर्मकृत्य नहीं होता ऐसे श्रावकको धर्मकृत्यमें हीन जानकर यथावत् धर्मकृत्य करानेके वास्ते दूसरे स्वामि भाई अर्थात् श्रद्धालु श्रावक उसको सहायतादें किसमांकि जिससे उस की यथावत आजीविकाहो और उसके धर्मकृत्यमें हानि न पड़े क्योंकि आजीविका सम्पूर्ण न होनेसे उस आजीविकाकी फिकर से चित्तमें चंचलता रहतीहै और चित्तकी चंचलता होनेसे धर्मकृत्य यथावत नहीं बनता इसलिये वे साधर्मी भाई उस धनहीन श्रावककी धनादि अथवा गुमाश्तगीरी आदिसे लेकर अनेकरीतिसे उसकी वत्सलता अर्थात् सहायता करें उस धर्मकृत्यके करनेसे उसको बहुत लाभ अर्थात् परम्परासे मोक्ष प्राप्त होगी इस लाभ के करानेमें जो सहायतादेना वही स्वामीवत्सल है नतु एक दिन दो दिन पेटभरकर जिमाना स्वामीवत्सलहै । दूसरा औरभी सुनो कि किसी साधर्मी भाई पर राजआदिकका संकट पड़े उसमें उसको सहायदेना अथवा किसीका कर्जा आदिक देनेसे धर्मकृत्य न बनता हो अथवा मांदा दुःखी आदिक नानाप्रकार के क्लेशोंमें पड़ेहुए साधर्मीको देखकर उसको उन क्लेशोंसे निकालकर जिनाज्ञा संयुक्त विधिसे धर्मकृत्यमें लगाना अर्थात् कराना उसीका नाम स्वामीवत्सल है नतु संसारी रीतिके वास्ते सहायतादेना ॥

शंका—अजी आपने कहासो तो ठीकही है परन्तु जीमनेका स्वामीवत्सल अगाड़ीभी श्रावककरतेथे क्योंकि देखो पुष्कलादिने चार

प्रकार का आहारनिस्पादन अर्थात् बनाकरके आपसमें मिलकरके भोजनकिया सो यह अधिकार श्रीभगवती आदिसूत्रोंमें कहाहै फिर आप जीमने के स्वामीवत्सलको क्यों निषेधकरतेहो क्योंकि यहतो साधर्मियों को जिमाना और जीमनाहै सो स्वामीवत्सलहीहै ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! असल स्वामीवत्सलतो जो हमने कहाहै सोहीहै और जो साधर्मीभाइयोंको जिमानाहै सोभी हमकुछ बिलकुल निषेध नहीं करतेहैं किन्तुअच्छाहै परन्तु जो हमने साधर्मी का लक्षणकहाहै कि जिनकी एक क्रिया और श्रद्धाहै वे दोचार, दस बीसामिलकर जैनासे आहारादिक बनायकर आपसमें मिलकर जीमें तो कुछ हर्ज नहीं क्योंकि देखो श्री 'भगवतीजी'में सावत्थीनगरीके श्रावक दोचारजने आपसमें मिलकर ऐसा विचारकियाकि आज चारप्रकारका आहार बनायकर अपन साधर्मीभाई इकट्ठाहोकरजीमें और फिर अपन सर्व्वजने देसाऊगासी आदिक धर्मकृत्य करें सो इसका विस्तार तो श्री-'भगवतीजी' सूत्रके १२शतक और पहले उद्देसामें कियाहै सो उसरीतिसे जो तुमलोग करो तो अनुमोदना करनेके योग्यहै परन्तु वर्त्तमान कालमें तुमलोग जिसरीतिसे कररहेहो उसी रीतिको देखकर श्रीआत्मारामजी इस तुम्हारे स्वामीवत्सल जीमनादिकको गधाखुरकनी बतातेहैं सो उनकी धर्म्म विषयक प्रश्नोत्तरकी पुस्तकके १७३वें पृष्ठमें देखलेना । इस हमारे लिखे शब्दको सुनकरतो तुमलोगोंको बुरा मालूमहोगा, परन्तु जो इस शब्दका भावार्थ बुद्धिपूर्वक विचारो तो कदापि यह शब्द बुरा न लगेगा। और उसभावार्थको समझकर, इस ऊंधी रीतिको छोड़कर यथावत रीति करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा क्योंकि देखो जो वर्त्तमानकालमें स्वामीवत्सलकी रीति होरहीहै सो स्वामीव-

वायसा कायसा ॥

अंक ३१ करण ३ योग १ भांगे उठे ३ व्रत ७ अव्रत ४२

करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा ॥

अंक ३२ करण ३ योग २ भांगे उठे ३ व्रत २१ अव्रत २८

करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा ॥

अंक ३३ करण ३ योग ३ भांगे उठे १ व्रत ४९ अव्रत०

करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कायसा ॥

अब दूसरी रीतिसे, मन वचन कायको करण और करना कराना अनुमोदना को जोग मानकर भांगे उठातेहैं सो अंक तो जैसे पहिले रक्खे गयेहैं उसी रीतिसे रक्खेजांयगे सो हम लिखकर दिखातेहैं ॥

अंक ११ करण १ योग १ भांगे उठे ९

मनसा करूं नहीं, मनसा कराऊं नहीं, मनसा अनुमोदूं नहीं, वायसा करूं नहीं, वायसा कराऊं नहीं, वायसा अनुमोदूं नहीं, कायसा करूं नहीं, कायसा कराऊं नहीं, कायसा अनुमोदूं नहीं ॥

अंक १२ करण १ योग २ भांगे उठे ९

मनसा करूं नहीं कराऊं नहीं, मनसा करूं नहीं अनुमोदूं नहीं, मनसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं, वायसा करूं नहीं अनुमोदूं नहीं, वायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, कायसा करूं नहीं कराऊं नहीं, कायसा करूं नहीं अनुमोदूं न-

हीं, कायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक १३ करण १ योग ३ भांगे उठे३

मनसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, कायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक २१ करण २ योग १ भांगे उठे ६

मनसा वायसा करूं नहीं १ मनसा वायसा कराऊं नहीं २ मनसा वायसा अनुमोदूं नहीं ३ मनसा कायसा करूं नहीं ४ मनसा कायसा कराऊं नहीं ५ मनसा कायसा अनुमोदूं नहीं ६ वायसा कायसा करूं नहीं ७ वायसा कायसा कराऊं नहीं ८ वायसा कायसा अनुमोदूं नहीं ।

अंक २२ का २ करण २ योग भांगे उठे ६

मनसा वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं, मनसा वायसा करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं कराऊंनहीं मनसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक २३ का २ करण ३ योग भांगा उठे ३

मनसा वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, मनसा वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, वायसा कायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक ३१ का ३ करण १ योग भांगा उठे ३

मनसा वायसा कायसा करूं नहीं, मनसा वायसा कायसा कराऊं नहीं, मनसा वायसा कायसा अनुमोदूं नहीं ॥

अंक ३२ का ३ करण २ योग भांगे उठे ३

मनसा वायसा कायसा करूं नहीं कराऊं नहीं, मनसा वायसा कायसा करूं नहीं अनुमोदूं नहीं, मनसा वायसा कायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक ३३ का ३ करण ३ योग भांगे उठे १

मनसा वायसा कायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

इसरीतिसे भांगे कहे और इस दूसरी रीतिमें व्रत अव्रतके उतनेहीहैं जितने पहिलेवाली रीतिके भांगेमेंथे परन्तु पहली रीतिके भांगेसे पचक्खान करे तो वर्त्तमान कालमें प्रवृत्ति होनेसे सुगमहै क्योंकि वर्त्तमान कालमें प्रचार पाहिली रीतिका विशेष करके देखनेमें आताहै इस अपेक्षासे इस दूसरी रीति में पचक्खाण करने और करानेवाले को विना अभ्यास किये कठिन मालूम होताहै परन्तु जो गुरु यथावत् सिखानेवाला हो तो यह रीतिभी सुगमहै क्योंकि देखो जो जिसमें अभ्यास करताहै उसको यह रीतिभी सुगम होजातीहैं इसलिये दोनों शास्त्रोक्त रीतियोंमेंसे जिसको जो यादहो वही करे परन्तु विना भांगेके पचक्खाण करना ठीक नहीं ॥

**शंका**—३ करण ३ जोगसे साधुका पचक्खाणहै श्रावकके ३ करण ३ जोगका पचक्खाण नहीं ॥

**समाधान**—हेभोलेभाई जो३ करण ३जोगसे श्रावकके पचक्खाण नहीं होता तो श्रीभगवतीजी में श्रावकका नाम लेकर ४९ भांगे श्रीसर्वज्ञदेव न कहते किंतु ४८ भांगेकाही वर्णन करते और

वह उसकी खोटी कहताहै वह उसकी खोटी कहताहै अर्थात् एक दूसरेकी निन्दा दिखानेको नाना प्रकारके प्रपंचमे अपनी अधिकता दिखातेहैं इस कारणसे न तो अपनी आत्माका अर्थ करतेहैं और जो उनके पासमें गृहस्थी आतेहैं उनकाभी आत्माका अर्थ नहीं होने देते हैं केवल उन गृहस्थियोंको दृष्टिरागमें बांधकर आप लड़तेहैं और उनको आपसमें लड़ातेहैं और जिनधर्म्मकी हीलना करातेहैं । कदाचित् कोई काल मूजिब ज्ञानवैराग्यसे जिनमत को अंगीकार करके भेषा- दिले तो कैसाही मनुष्य बचकर चले तोभी अपने प्रपंचमें मिलाकर उसकाभी सत्यनाश करतेहैं पन्तु जिसका शुभकर्म प्रबल पुणयका उद- य होगा वही इस प्रपंच में न पड़कर अपनी आत्माका अर्थकरेगा क्योंकि पूर्व आचार्योंके वचनोंसे मालूम होताहै सो पूर्व आचार्योंके वच- नोंकी साक्षी दूसरेतीसरे प्रकाशमें लिखआयेहैं ऐसे २ कारणोंसे प्रवृत्ति की न्यूनताहै और इसीलिये न कराते होंगे परन्तु बिलकुल इस बातके बतानेवाले या जाननेवाले या करानेवाले नहीं सो नहीं किन्तु कराने- वालेभीहैं क्योंकि देखो पच्चक्खाणके गुणपचास भांगे श्रावकोंके जान- नेके वास्ते यंत्रादि अनेकरीतिसे पूर्व जानकार आचार्य वा साधुओंने बनायेहैं और उनको सिखातेभी हैं और जो अच्छे जिनमतके जानका- रहैं वे एक 'करण' १ 'योग' से बारहव्रतादि अथवा और पच्चक्खाणादि उच्चारण करातेहैं इसलिये भांगेसे पच्चक्खाण कराना ठीकहै ॥

**शंका**—अजी आप युक्ति देतेहैं सो तो ठीकहै परन्तु किसी सूत्र वा प्रकरण मेंभी भांगेसे पच्चक्खाण करना लिखाहै या आप युक्तिसेही बताते हो ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! बिना भींतके चित्र कोई नहीं बना

सत्ता भींत होगी उसीजगह चित्र होगा इसलिये भोदेवानुप्रिय ! तुझको सूत्र और प्रकरण सुननेकी इच्छाहै तो अब हम सूत्र और प्रकरणकी साख देकर दिखातेहैं ।श्री 'भगवती' जी सूत्र शतक आठमा; उद्देस पांचवेंमें से थोड़ासा पाठ लिखतेहैं जो भगवतीजी बनारसमें छपीथी उस पुस्तक में पृष्ठ ६०० निर्अंक वहांसे पांचवां उद्देसा शुरू हुआहै सो पृष्ठ ६०३ तक भांगोंकी कई तरहकी रीतियां कहीं हैं। परन्तु पृष्ठ ६०३के अंकसे पहली पंक्तिमेंसे मूलसूत्रमेंही जो एकसे लेकर गुणपचास तक बराबर भांगे उठायेहैं सोही पाठ लिखतेहैं "तिविहंतिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ करंतं नाणु जाणइ मणसा वयसा कायसा १।तिविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ करंतं नाणु जाणय मणसा वयसा २। अहवा न करेइ न कारवेइ करंतं नाणु जाणय मणसा कायसा ३। अहवा न करेइ वयसा कायसा ४। तिविहंएविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ३मणसा ५। अहवा न करेइ ३ वयसा ६। अहवा न करेइ ३ कायसा ७। द्विविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा वयसा कायसा ८। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणइ मणसा, वयसा, कायसा ६। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय मणसा, वयसा, कायसा १०। दुविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा, वयसा ११। अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा कायसा १२। अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा, कायसा १३। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणय मणसा, वयसा १४। अहवा न करेइ न करंतं नाणु जाणय मणसा, कायसा १५। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणय वयसा, कायसा १६। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय मणसा,वयसा१७। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय मणसा कायसा १८। अहवा न कार-

वेइ करंतं नाणु जाणय वयसा, कायसा १९। दुविहं एक्क विहेणं पडि-क्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा २०। अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा २१। अहवा न करेइ न कारवेइ कायसा २२। अहवा न क-रेइ करंतं नाणु जाणइ मणसा २३। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणय वयसा २४। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणय कायसा २५। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय मणसा २६। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय वयसा २७। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय कायसा २८। एगविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ मणसा वयसा कायसा २९। अहवा न कारवेइ मणसा, वयसा, कायसा ३०। अहवा करंतं ना-णु जाणइ मणसा, वयसा, कायसा ३१। एक्कविहं दुविहेणं पडिक्कममा-णे न करेइ मणसा वयसा ३२। अहवा न करेइ मणसा, कायसा ३३। अहवा न करेइ वयसा, कायसा ३४। अहवा न कारवेइ मणसा, वयसा ३५। अहवा न कारवेइ मणसा, कायसा ३६। अहवा न कारवेइ व-यसा, कायसा ३७। अहवा करंतं नाणु जाणइ मणसा वयसा ३८। अहवा करंतं नाणु जाणइ मणसा, कायसा ३९। अहवा करंतं नाणु जाणइ वयसा, कायसा ४०। एगविहं एक विहेणं पडिक्कममाणे न करेइ मणसा ४१। अहवा न करेइ वयसा ४२। अहवा न करेइ मणसा ४३। अहवा न कारवेइ मणसा ४४। अहवा न कारवेइ वयसा ४५। अहवा न कारवेइ कायसा ४६ अहवा करंत नाणु जाणइ मणसा ४७। अहवा करंतं नाणु जाणइ वयसा ४८ अहवा करंतं नाणु जाणइ कायसा ४९। पडुप्पन्न संवरेमाणे कितिविहेणं संवरेइ २ एवं जहा पडिक्कमणेणं ए गुणवर भंगा भणिया संवर माणेवि एगुणवन्नभंगा भाणियथा। अणग्गयं पच्चक्खमाणे किं तिविहं तिविहेणं पच्चखाए एवं

त्सलतो नहीं किन्तु धामीवत्सल और मुर्चरीवत्सलतो है। सो हम इन दोनों शब्दों का भावार्थ सहित मतलब दिखाते हैं कि यह धामीवत्सल और मुर्चरीवत्सल कैसे हैं ? सो प्रथम धामीवत्सलका मतलब सुनो कि प्रथम तो लोगोंके जीमनेके वास्ते वस्तु हलवाई आदिक बनाता है सो वह हलवाईभी मिथ्यादृष्टिहै इसलिये उस हलवाईसे जैनियोंके माफिक यत्ना कभीभी न होगी। दूसरा उसमें कामका करानेवालाभी एक दो श्रावक मुखतियार होताहै सो तो केवल हुक्म करनेवालाहै और कामकाज करनेवाले मिथ्यादृष्टि सेवक या मन्दिरके गुमाश्ता आदिके होतेहैं अथवा किसीके यहां विवाहादिक हुआ और उस का माल बच-रहा उसकोभी ये लोग स्वामीवत्सलादिक में लगातेहैं। इन दोनों रीति-योंका आहार उत्पन्नहुआ थका धर्मकृत्यमें गिनना कदापि ठीक नहीं। इसलिये प्रथमतो अयत्नासे चार प्रकारका आहार उत्पन्न करना अधर्म है। दूसरी औरभी सुनो कि जहां साधर्मी भाइयोंका इकट्ठा होनाहै उस जग-ह आपसे आपही इकट्ठे होतेहैं कदाचित् कोई साधर्मी भाई न आवे तो साधर्मी उसको बुलानेको जावे परन्तु जैसे आजके वक्तमें सेवक न्योता देने जाताहै इसरीतिका न्योता स्वामीवत्सलका नहीं किन्तु न्यात-जातकाहै। तीसरी और सुनोकि जब सब लोग इकट्ठे होकर जीमने को बैठतेहैं उसवक्त गद्दी और पाटा लगाये जाते हैं तो अब विचार क-रोकि गद्दी और पाटा कुछ श्रावकतो लावेगाही नहीं किन्तु मजूर लावेगा सो मजूरतो यत्नासे काम करें नहीं और यत्ना विदून दयाधर्म बने नहीं। चौथी और सुनो कि जब वे लोग जीमनेको बैठतेहैं तब दश २ पांच २ शामिल बैठकर जीमते हैं। अब देखो और विचार करो कि जो सूखीसी चीजहै जिसके खानेमें उंगली मुखमें न जाय उसे शा-

मिल खानेमें तो कुछ हर्ज नहींहै परन्तु जिस चीजके साथ उंगली मुखमें जाय जैसे झोलकी दाल वगैरः अनेक चीजें बनतीहैं उन चीजों को शामिल खानेमें समुर्छम पचेन्द्री पैदाहोतेहैं ऐसा शास्त्रोंमें कहाहै। 'पन्नवणाजी' उपाङ्ग सूत्रमें कहाहै कि दोमनुष्यों की लारमें लार मिलनेमें समुर्छम जीव उसी वक्त असंख्यात उत्पन्न होजातेहैं तो अब विचार करके देखो कि जब पांचसातजने शामिल जीमनेको बैठतेहैं उसवक्तमें खाटा अर्थात् कढी अथवा क्षीर आदि झोलकी चीजें सबजने खातेहीहैं उस समयमें उन सबोंकी लार अर्थात् थूक मिलनेमे जो उन क्षीरादिक झोलकी चीजोंमें जो असंख्यात् जीवोंकी उत्पत्ति होगी सो संख्या तो ज्ञानी जाने परन्तु ऐसी जीवोंकी उत्पन्न हुई चीजों को खानेका श्रावकोंका तो काम नहीं क्योंकि श्रावक तो बड़े विवेकी और जीवकी रक्षा करनेवालेहैं। अब पांचवीं और सुनोकि कितने लोग अपने घरमें जीमती दफै झूंठमें तो कग्रासभी नहीं छोड़ते होंगे परन्तु स्वामीवत्सलमें जीमनेको जांय तो उस जगह पत्तल वा थालीमें खूब माल छोड़ें। अब देखो इस जगह विचारकरो कि भला आप खाय तो ठीक परन्तु साधर्मी का माल झूंठमें छोड़कर अनेक अनर्थके करनेवाले महतरादिकों (भंगी)को दिलाना क्योंकि झंठा और तो कोई ले नहीं, लौकिकमेंभी कहतेहैं कि गऊके मुखमें से निकालकर सूकर के मुखमें देना यह काम कुछ अच्छे आदमियोंका नहीं है। और छठी बात फिरभी सुनोकि उसमेंसे नापितादि (नाई) नौकर चाकरोंकोभी देना तो वे नापितादि नौकरचाकर कुछ साधर्मी नहींहैं और यह जीमन केवल साधर्मियोंके वास्ते होताहै। औरभी सुनो कि कितने एक लोग खूब भंगादि पीकर यानी नशाआदि करके जातेहैं कि जिस

से खूब अच्छी तरहसे मालखा में आवे। इसरीतिका इरादा करके जाते हैं सो जीमनमें जाने तो मुस्तैदहुए परन्तु मन्दिरादि धर्मकृत्यमें तो उन लोगों की सूरत बिलकुल नहीं दीखतीहै और किसी२जगह और कि- सी २ समयमें तो दिनमुंदे तक जीमतेहैं अर्थात् रात्रि भी होजातीहै और दोचार मुखत्यार आदि तो अवश्य करके रात्रिमेंही खाते होंगे। इतना तो हमने जीमनेका वर्णन किया अब जीमनेके बादका वर्णन सुनो। जब वे जीम२कर हाथधो चुके उस वक्त में आपसमें खूब ठट्ठा मसखरी हंसनाबोलना करना अथवा बगीचोंकी सैर करना अथवा जो कोई कामवालेहों तो अपने काममें चलेजाना, सिवाय संसारीकृत्यके धर्म कृत्य करना तो एक तर्फ रहा किन्तु धर्मका जिकरभी नहीं। सो इस स्वामीव- त्सलमें जीमनेवालेको जो रीति करनाचाहिये सोतो हम आगे लिखेंगे परन्तु इस जगह तो जैसा वर्त्तमान कालका स्वामीवत्सलका जीमनहै उसका वर्णनकिया है ॥

अब जो कुछ हमने ऊपर लिखाहै उसको बांचकर मध्यस्थ हो- कर अपनी बुद्धिसे विचार करो कि यह स्वामीवत्सलहै या जो हमने धामीवत्सल शब्द लिखाहै वही है सो ये सब बातें एकजनेकी अ- पेक्षासे लिखीहैं कि जो कोई दूसरेको शामिल न करे और अपनेही घरसे सब कामकरे। अब दूसरा मुडचरीवत्सल शब्दका अर्थ लिखते हैं कि जिसको अभी पंचायती स्वामीवत्सल कहतेहैं। देखो दोचार आ- दमी मिलकर धर्मका नाम लेकर मालखानेकी इच्छासे टीपनी करना कराना शुरूकिया तब सबलोगोंसे रुपया मंडवानेलगे और दो चार द- फे फिर कर उनसे मंडातेहैं कोईतो अपनी खुशीसे लिखताहै, कोई शरमसे, कोई देखादेखी लिखताहै और कोई नहीं मांडे तो उसके

पास आपजाय और सेवकोंको भेजकर जरूर मंडायलेतेहैं । अब इस जगह हमने 'मुडचरी' शब्द दियाहै सो इस 'मुडचरी' के अर्थको आ- खमींचकर अपनी बुद्धिसे विचारकरो कि यह बात ठीकहै वा नहीं ? देखो कोई तो अपने दिलका सख्तहै इसलिये पैसा नहीं खर्चसके अ- र्थात् कृपण है, कोई अपनी नादारी से क्योंकि उसकी इज्जत तो है परन्तु हींगके थैलेकीसी खुशबूहै परन्तु उसमें हींग नहींहै, इसरीतिसे बिचारेने अपनी इज्जत बनारक्खीहै परन्तु जब लोग उसको दबातेहैं तब अपनी इज्जतके खयालसे देनाही पड़ताहै परन्तु दिलतो दूखता हीहै । और किसीको धर्ममें रुचि नहींहै परन्तु लोकलाजसे देताहै और कोई अपनी दिलकी खुशीसेभी देताहै परन्तु रुपयादोरुपया देने की खुशीहै और उससे दसपांच मांगतेहैं सो वो लोगोंके कहनेसे दशपांच तो देताहै परन्तु उसकाभी खुशीसे देना न रहा परन्तु दिल कुन्द कर- केही देताहै । इसरीति की जो टीपनी आदिकसे लोगोंके अन्तरंग रुचि विदून उनसे लेना और उनके चित्तको दुखाना तब उस ऊपर लिखे शब्दके सिवाय और क्या अर्थ बनसकताहै ? और बाकी जीमण की रीति जो हम ऊपर लिखआयेहैं सो सब इसके शामिल करने से इ- न दोनों में इकसार समझलेना । अब इसमें एकबात औरभी सुनोकि स्वामी वत्सल साधर्मी अर्थात् सरीसी क्रिया और श्रद्धावालेहैं उन का जो वत्सल उसका नाम स्वामीवत्सलहै अब इस जगहतो जो जी- मणमें लोग इकट्ठे होतेहैं उनकी जुदी२ श्रद्धा और अपनी२ श्रद्धाके मूजिब भिन्न२ उपदेशहै परन्तु एक मन्दिर के दर्शनमें तो एकता है परन्तु उसमेंभी चैत्यवन्दन पूजनादि क्रिया करनेमें श्रद्धा एक नहींहै इसलिये भव्यजीव आत्मार्थी अपनी बुद्धिसे विचारे कि शास्त्रोक्त स्वामी-

वत्सलका फल क्योंकर होसके। इसलिये अब इस झगड़ेके विस्तारमें निष्प्रयोजन कड़ाकूट करना वृथा जानकर छोडतेहैं। अब जो शास्त्रोंमें लिखीहै और अगाड़ी श्रावकोंने कियाहै उसकी रीति लिखतेहैं सो सुनो। हम प्रथमतो स्वामीवत्सलका अर्थ चलतेही लिखआयेहैं कि सरीसी क्रिया और श्रद्धावालेको जो सहाय देना उसका नाम स्वामीवत्सलहै परन्तु किंचित साधर्मीके जीमने वा उसको जिमाना उसकाभी भावार्थ दिखातेहैं। सरीसी क्रिया और श्रद्धावाले पांच, दस वा बीसजने मिलकर कहनेलगे कि भाई आजतो कुछ असणं पाणं खादम स्वादम चार प्रकार का आहार अपन सबजने इकट्ठे होकर करें । फिर यहांसे चलकर धर्मकृत्य विशेष सबजने मिलकर करेंगे ऐसी इच्छाहै आप सबकी मर्जी होय तो ठीकहै। इसबातको सबजने सुनकर खुशीहों और कहें कि अच्छा भाई जिसमें धर्मध्यान विशेष हो सो काम करना ठीकहै। इसरीतिका विचार करके वे लोग सब सामग्री भोजन आदिक करके धर्मध्यानमें लगे। इसरीतिसे जो साधर्मी आपसमें इकट्ठे होकर यत्नासहित भोजन आदि करें तो लाभकाकारणहै क्योंकि जो साधर्मीके यहां जीमें तो अवश्यकरके जिस रोज जीमाहो उसरोज तो दुबिहार तिबिहार चौबिहार यथाशक्ति पचक्खाण सामायक प्रतिक्रमण देशावगासी रात्रिका ब्रह्मचर्य अवश्यमेव करे और दूसरे दिन उपवास पोसाआदिक करे अथवा देसावगासी करे अथवा मन्दिरमें भगवानकी विशेषकरके भक्तिकरे। इसरीति से साधर्मीके यहां जीमनेवाले को अवश्यमेव करना चाहिये इसलिये हे भव्यप्राणियो ! जो तुमको जिनमत की चाह और अपनी आत्माके कल्याणकरनेकी इच्छाहो तो जिनाज्ञासहित विधि करो जिसमें तुम्हारा कल्याणहो व जिससे परम्परासे

करूं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं वायसा कायसा। कराऊं नहीं मनसा वायसा। कराऊं नहीं मनसा कायसा, कराऊं नहीं वायसा कायसा। अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा, अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा।

अंक १३ करण १ योग ३ भांगे उठे ३ व्रत ७ अव्रत ४२

करूं नहीं मनसा वायसा कायसा, कराऊं नहीं मनसा वायसा कायसा, अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कायसा।

अंक २१ करण २ योग १ भांगे उठे ६ व्रत ३ अव्रत ४६

करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा। करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा। कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा।

अंक २२ करण २ योग २ भांगे उठे ६

करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा कायसा। करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा। कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा।

अंक २३ करण २ योग ३ भांगे उठे ३ व्रत २१ अव्रत २८

करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वायसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा

तंचेव भंगा ए गुणवन्न भाणियथा जावअहवां करंतं नाणु जाणइ कायसा। समणो वासगस्सणं भंते पुव्वामेवथूल एमुसावाए पच्चक्खाये भवइसेणंभंते पच्छापच्चाइक्खमाणे एवं जहा पाणाइवायस्स सीयालं भंगसयं भाणियं तहामुसावायस्स विभाणियव्वं, एवं आदिन्नादाणस्सवि एवं थूल गस्स मेहुणस्सवि, परिग्गहस्सजावकरंतं नाणु नाणुजाणइकायसा, एएखलु एरिसगासमणो वासगाभवंति, नोखलु एरिसगा आजीवियो वसगा भवंति" ॥ इत्यादि ६१० के अंकदार पृष्ठ तक इसी मतलबका पाठ चलाहै सो आगे पीछेका पाठ जानलेना ॥

सो इसके अर्थको टीकाकार अच्छीतरहसे खुलासा करतेहैं और टब्बामेंभी इसका अर्थ खुलासा लिखाहुआहै कि श्रावक होगा सो तो भांगेसेही पचक्खाण करेगा और आजीविकाका श्रावक होगा सो इन भांगोंसे पचक्खाण न करेगा क्योंकि इस पाठमें खुलासा लिखा है कि 'समणोवासगा' अर्थात श्रीमहावीरस्वामीके श्रावकश्राविका भगवतकी आज्ञा सहित भांगेसे पचक्खाण करेंगे औरजो भगवतआज्ञाके नहीं माननेवालेहैं अर्थात आजीविकाके उपासकहैं वो इनभांगोंको न जानेंगे न करेंगे इसलिये जिनमतकी चाहनावालेको अपनी आत्माके कल्याणकरनेकी इच्छाहोगीतो शास्त्रोक्त विधिसेही पचक्खाण करेंगे नतु जैनी नामधरानेवाले। यहतो हमने श्रीभगवतीसूत्र का पाठ लिखकर साखदी। अब प्रवचनसारोद्धारमें पचक्खाणका चौथा द्वार कहाहै उस चौथेद्वारके चलतेही पचक्खाणके चार भांगे कहे सो चारोंभांगोंका स्वरूप जिसरीतिसे प्रकरणरत्नाकरके तीसरे भागके ४० वें पृष्ठमें लिखाहै उसीरीतिसे इस जगह लिखतेहैं कि " प्रत्याख्यानने विषय चतुरभंगीथायीछे जेमके पोते प्रत्याख्याननु स्वरूपजाणतो छता जाणनार

गुरुनीपाशे करेछे ए प्रथमभंग, गुरुजाणनाराहोय अनेपोतेअजाणछता गुरुनीपाशे करे ते द्वितीयभंग, शिष्य जाणहोय अने गुरुअजाण छता गुरुनी पासे करे ते तृतीयभंग. अने गुरु तथा शिष्य बन्ने अजाणछता गुरुनी पासे करे ते चतुर्थ भंग जाणवो" । "ए चार भंग पोताना मने कल्पीनें करयानथी पण सिद्धान्तनें विषय कहेलाछे " " जाणगोजाणगसगासे जाणगोअजाणगसगासे अजाणगोअजाणगसगासे इत्यादि " " तेमा प्रथमभंग शुद्धछैः केमके बन्नेने जाणपणुंछैः बीजो भंगपण शुद्धछैः केमके गुरु जाणनार अने शिष्य अजाणछतां तेने संक्षेपेथी बोधकरी प्रत्याख्यान करावेछैः अन्यथा अशुद्धछै, तीजोभंग जोपण अशुद्ध छै तो पण तथाविधगुरुनी अप्राप्तीछतां गुरुनां बहुमानेंकरी गुरुसम्बन्धी पिता, पितृव्य, बंधु, मामा अने शिष्यादि बीजापण कोई साक्षीकरीने ज्यारे प्रत्याख्यान करेछै त्यारे शुद्धछै चोथोभंग अशुद्धछै ॥१८७।१८८॥ " इसरीति से प्रकरणरत्नाकरके ३ रे भागके ४० पृष्ठमें यह अर्थसाहित लिखाहै सो देखलेना इस रीतिसे इस प्रवचनसारोद्धारकी टीकामें भी लिखाहै सो १८८ मीं गाथाकी टीका जिसकी खुशीहो सो देखलेना ऊपर लिखा भावार्थही टीकामें है इसलिये वह पाठ न लिखा ॥

**शंका**—अजी आपने भगवतीसूत्र और प्रवचनसारोद्धारकी शाख देकर पाठभी लिखदिया सो इस भगवतीजी या प्रबचनसारोद्धारको आपके सिवाय जो वर्त्तमान कालमें पंडित बहुश्रुत कि जिन्होंने अनेक ग्रंथ देखे हैं ऐसे लोगतो कोई इस पचक्खाणको अर्थात् भांगेसहित नहीं करातेहैं सो क्या इन्होंने ये ग्रंथ नहीं देखे या नहीं पढ़ेहैं इसलिये हमारेको सामान्य विशेष का कारण मालूम होताहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! जो हमने सूत्रोंकी शाख दीहै सो सूत्र कुछ मेरे बनायेहुए नहीं सूत्रतो गणधरोंके रचेहुएहैं और प्रवचन-सारोद्धारभी पूर्वधारियोंका रचाहुआहै इसलिये इसकी साख दीनीहै और जो तुमने कहा कि आपके सिवाय और कोई वर्त्तमानकालमें नहीं कराताहै सो कोईनहीं कराताहै इसमें तो मेरा कुछ जोर नहीं और मैं जो कराताहू सो शास्त्रोक्त विधिसे कराताहूं जो इसमें किसी तरहका दूषण होतो मेरेको बताओ तो मैं इस करानेको छोड़दूं और जो यह मेरा कराना शास्त्रानुसार भगवतआज्ञासे है तो मेरेको लाभकारीहै किन्तु भगवतआज्ञा विरुद्ध अलाभकारीहै। और जो तुमने कहाकि ऐसे२ बहुश्रुतहैं उन्होंने क्या ये ग्रंथनहीं देखे सो मैंतो इसबातको नहीं कह सकूं कि उनबहुश्रुतोंने न देखेहोंगे परन्तु जो वे लोग नहीं करातेहैं तो उनका देखना अर्थात पढ़नाभी न देखने अर्थात् न पढ़ने के समान है और कदाचित उन्होंने पढ़ाभी होगा तो अपनीमतकल्पनासे पढ़ा होगा जो वे गुरुकुलवास से पढ़ेहोते तो भगवतआज्ञासे जो विधि पचक्खाणकी है उसको अंडवंड करके न चलाते अथवा भगवतआज्ञाकी यथावत श्रद्धा न होगी। जो वे यथावत श्रद्धावान होते तो शास्त्र से विपरीत पचक्खाण आदि कदापि न कराते इसीलिये उपाध्याय श्रीयशविजयजी महाराजने ३५० गाथाके स्तवनकी चौदहवीं गाथामें जैसे बहुश्रुतों की तुमने साक्षीदी है हमजानें उन्हींके वास्ते लिखाहै सो गाथा यहहै " जिम २ बहुश्रुत बहुजन सम्मतो बहु शिष्यपरवरियो, तिम २ जिनशासननो वयरीजोनविनिश्चयदरियो रे" इस गाथाका अर्थ तो हमने स्याद्वादानुभवरत्नाकरके ३रे प्रश्न के उत्तरमें विस्तार करके लिखाहै सो वहांसे देखलेना। और जो तुमने सामान्य विशेषकी कही

सोभी तुम्हारा कहना ठीक नहींहै क्योंकि जिनसूत्रोंकी हमने साक्षी दी है वे सूत्र विशेष प्रामाणिक हैं। कदाचित् इस आशयसे कहतेहो कि उनशास्त्रोंमें अनेकचीजोंकी विधिकहीहै इसलिये सामान्य हैं तो अब देखो हम तुम्हारेको विशेष सूत्रकाभी प्रमाण देतेहैं कि जिसमें केवल पचक्खाण करनेकी विधि और आगार आदि गिनायेहैं सो पचक्खाणभाष्यकाही प्रमाण देतेहैं सो पचक्खाणभाष्यके ७में द्वारकी४३ वीं गाथाको लिखकर दिखाते हैं "एयंच उत्तकाले, सयंच मणवयणतणहिं पालणियं ॥ जाणगजाणगपासित्ति भंगचउगे तिसुअणुणे ॥४३॥" (एयंचके०) एपूर्वोक्तवली ( उत्तकालेके० ) उक्तकाल जे पोरिसियादिक कालप्रमाण रूपते ( सयंचके ०) पोतानी मेले जेवीरीते बोल्युं होय यथोक्त रूपे जे भंगादिके लीधुंहोय ते भंगादिके ( मणवयणतणहिके० ) मनवचन अने कायायेंकरी ( पालणियंके० ) पालवायोग्य ते ( जाणग २ पासि के०)जाणग २ पासेकरी एटले जाणअजाणयापासें करे (इति के०) एम ( भंगचउगे के० ) भंगचतुष्के एटले चारभांगोंने विषे करे तेमां(तिसअणुस्मा के० ) पहिला त्रण भांगाने विषे अनुज्ञा एटले आज्ञाछै एटले पचक्खाणनो करनार शिष्य पण जाण होय अने बीजो पचक्खाण करावनार गुरुपण जाण होय ए प्रथम भंग शुद्ध जाणवो । बीजो पचक्खाण करावनार गुरुजाण होय अने पचक्खाण करनारा शिष्य अजाण होय ए बीजोभांगो पण शुद्ध जाणवो । तीजो पचक्खाण करनारा शिष्यपण जाणहोय अने पचक्खाण नो करावनार गुरु अजाणहोय ए तीजो भांगो पण शुद्ध जाणवो। चौथो पचक्खाण करनाराशिष्य अने पचक्खाणकरावनारा गुरु ए बेहु अजाण होय ते चौथो भांगो अशुद्ध जाणवो । ए रीते चारभांगा मांहेंथी त्रणभांगे पचक्खाण करवानी आज्ञाछैः

अने चौथाभांगाने विषे आज्ञा नथी "इसरीतिसे पचक्खाणभाष्यमें लिखा है कि चौथाभांगा भगवंतकी आज्ञामें नहीं अब इस जगह 'पिण' शब्दजो दोजगह दियाहै उसी का विशेष अर्थ दिखानेके वास्ते हिन्दुस्तानीभाषामें लिखतेहैं जो शख्स पचक्खाणका करनेवाला है सो जानकार अर्थात् 'करण' 'जोग' से धाराहुआ जो पचक्खाण जिस भांगेसे पालना होय उस भांगेको धारकर गुरुके पासमें विनयसहित हाथ जोड़कर खड़ा होय और कहे कि हेस्वामिन्! अमुक भांगा से फलाना पचक्खाण कराइये उस वक्तमें जो गुरु जाननेवाला है वह श्रावकका वचन सुनकर 'करण' 'योग' लगायकर भांगेसे पचक्खाण करावे इसरीतिसे जो पचक्खाण करे वह सर्वज्ञदेवकी आज्ञासहित शुद्ध पचक्खाणहै ॥ अब दूसरा भांगा कहतेहैं कि पचक्खाणका करानेवाला गुरुतो जानकार हो और करनेवाला शिष्य अजाण अर्थात् जानकर न हो यह दूसरा भांगाभी शुद्ध है। पण शुद्ध जाणवो इसका अर्थ करतेहैं कि 'पण' शब्द क्योंदिया सो 'पण' शब्दका अर्थ दिखातेहैं कि जानकार गुरु पचक्खाण कराने के बाद जिज्ञासुसे कहे कि हेदेवानुप्रिय ! अमुक 'करण' अमुक 'जोग' अमुक भांगेसे पचक्खाण करायाहै सो तू उपयोग रखकर पालियो इस कहनेके वास्ते 'पण' शब्द रक्खाहै और जो करानेवाला गुरु इसरीतिसे पचक्खाण करनेवाले को न समझावे तो यह भांगाभी अशुद्ध अर्थात् आज्ञामें नहीं ।। अबतीसरा भांगा कहतेहैं कि पचक्खाण का करनेवाला तो जानकार अर्थात् प्रथम भांगे के लिखेमूजिब हो और करानेवाला गुरु अजान हो इस जगह गुरु शब्द करके पिता, काका, मामा, वड़ा भाई आदिक लौकिक गुरुको लियाहै नतु आचार्य, उपाध्याय, साधुकी अपेक्षा। यह तीसरा भांगाभी 'पण' शुद्ध जाणवो सो इस जगहभी 'पण'

शब्दका अर्थ ऐसाहै कि उन लौकिक गुरु आदिकका बहुमान रखनेके वास्ते उनकी साक्षी लीनीहै परन्तु पच्चक्खाणका करनेवाला जानकार होनेसे यथावत् पालेगा इसलिये भगवतकी आज्ञामें है जो भगवत् आज्ञामेंहै सो शुद्धहै इसलिये इन तीनों भांगोंसे तो पच्चक्खाण करना भगवत आज्ञामेंहै ॥ शेष चौथा भांगा जो अशुद्धहै उसको अशुद्ध कहने का यही प्रयोजनहै कि करानें और करनेवाला दोनों अजानहैं इस-लिये भगवतआज्ञामें नहीं क्योंकि देखो जिनमतमें तो जानकार यत्न करनेवालेकोही जैनी कहाहै इससे जो विपरीत सोही मिथ्यात्वीहै। इस मिथ्यात्वकी अपेक्षासेही जानकार यत्न करनेवालेको समकिती कहाहै और भी देखोकि दो पुरुष एक गांव जानेवालेहैं और वे दोनोंही अजानहैं तो गांवको पहुंचनाही कठिनहै, उन दोनोंमेंसे एकभी जानकार हो तो उस गांवको पहुंचना सुगमहै औरभी देखोकि अंधेको अन्धाभी मार्ग नहीं बता सक्ताहै इसी अपेक्षासे श्रीआनन्दघनजी महाराज १५वें श्री-धर्मनाथजीके स्तवनमें छठीगाथाकी पिछली तुकमें कहतेहैं कि "अन्धो अन्धपुलाय" इसरीतिसे करानेवाला और करनेवाला अजान होनेसे अन्धेके समानहैं इसीलिये यह चौथा भांगा भगवत आज्ञामें नहीं है ॥ सो हेभव्य प्राणियो! शुद्ध जिनआज्ञाको अंगीकार करके कुमति कदा-ग्रह करानेवाले कुगुरुओंका संग तजो, और आत्मार्थी शुद्ध गुरु उपदे-शदेनेवालेको भजो, इसलिये मुक्तिमार्गको जल्दी सजो, और मिथ्यात्वसे लजो, जिससे तुम जल्दी शुद्ध होकर जिनमार्गमें आओ जिससे तुम्हारा कल्याणहो। इसलिये हे भव्यप्राणियो! प्रथम पच्चक्खाण करनेकी रीति जिनाज्ञा सहित सीखो जिससे तुम्हारेको पच्चक्खाण करनेमें यथावत लाभहो और जिनाज्ञा शुद्ध पले और समकितकी प्राप्ति होय इसलिये

शास्त्रोंमें कहाहै कि समकितीकी जो नौकारसी का फलहै सो मिथ्यात्वी के मासखमणका फल न होगा इसलिये हमारा उपदेश आत्मार्थी भव्य-जीवोंके वास्ते उपकारी जबही होगा कि जो भव्यप्राणी जानकर अर्थात् समझकर करेगा उसीके वास्ते नतु धमाधम करनेवालों के वास्ते ॥ ५ ॥ औरभी देखोकि जो वर्त्तमान काल में पच्चक्खाण की रीति चलरहीहै सो पच्चक्खाणभाष्यकी रीति से विपरीत अर्थात् औरकीऔर गच्छवाले लोग अपनी२ मत कल्पना और गच्छोंकी परम्परा अपनी वाड़ाबंधी बांधकर जुदी २ रीतिसे करातेहैं सो बुद्धिमान पुरुष अपनी आत्माके अर्थ की इच्छावाला होय सो हम पच्चक्खाण भाष्यमें जैसी आगारों कीसंख्या लिखीहै उन्हीं आगारों के मुजिब केवल नमूनामात्र दिखानेके वास्तेजो पच्चक्खाणमें जितने२ आगारोंकी संख्या है उसको और पच्चखाण के नामको बतौर यंत्रके लिखकर दिखातेहैं इससे जानलेना सो यंत्र प्रतिक्रमणके छापेकी पुस्तक में ४८४ के पत्रमें लिखाहै उसीकी नकल इस जगह करतेहैं और इन आगारोंकी संख्या प्रवचन सारोद्धारके ४थे द्वारमें लिखीहै वहांसे देखलेना वह यंत्र यहहै—

पच्चक्खाणके आगारोंकी संख्याके यंत्रकी स्थापना।

| अंक | पच्चक्खाणके नाम | संख्या | आगारों के नाम |
|---|---|---|---|
| १ | नौकारसी | २ | अन्न. सह. |
| २ | पोरसी | ६ | अन्न. सह. पच्छन्न. दिसामो. साहुव सव्व. |
| ३ | साड्ढ पोरसी | ६ | ,, ,, ,, ,, ,, ,, |
| ४ | पुरिमड्ढ | ७ | अन्न. सह. पच्छ. दिशा. साहु. सव्व. महत्त. |

| अंक | पच्चक्खाणके नाम | संख्या | आगारों के नाम |
|---|---|---|---|
| ५ | अवड्ढ | ७ | अन्न. सह. पच्छ. दिसा. साहु. सव्व. महत्त. |
| ६ | एकासणु | ८ | अन्न. सह. सागा. आउं. गुरु. परि. मह. सव्व. |
| ७ | वियासणो | ८ | ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, |
| ८ | एकल ठाणु | ६ | अन्न. सहस्सा. लेवा. गिहत्थ. उक्खित्त. पडुच्च. परि. महत्त. सव्व. |
| ६ | विगई | ६ | ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, |
| ११ | आयविल | ८ | अन्न. सह. लेवा. गिह. उक्खि. परि. मह सव्व. |
| १२ | उपवास | ५ | अन्न. सह. परि. मह. सव्व चोल पट्टागार यतिने. |
| १३ | पाणहार | * ६ | लेवे. अले. अच्छे. बहु. ससित्थे. असित्थे |
| १४ | अभिग्रह संकेत | ४ | अन्न. सह. मह. सव्व. |
| १५ | दिवसचारिमं | ४ | अन्न. सह. मह. सव्व. |
| १६ | भवचारिमं | ४ | ,, ,, ,, ,, |
| १७ | देसावगासिक | ४ | ,, ,, ,, ,, |
| १८ | समकेतना | ६ | राया. छणा. वला. देवा. गुरुनि. वित्ति. |

अब इस पचक्खाणकी रीति कहनेके अनंतर सामायक की किंचित् विधि कहतेहैं. जो सामायक लेनेवाला हो वह पेश्तर क्या २ चीज सीखे तो पेश्तर नौकार को आदि लेकर इरियावही लोगस्स आदिक वीधि

---

* नोट–अनेसलेवा पनेसलेवा जो ६ आगर हैं सो साधु के वास्ते हैं नतु श्रावक के वास्ते. जिनशास्त्रों की हमने साक्षी दी है उन में खुलासा है सो वहां से देख लेना।

सहित सीखे ॥

शंका—नौकार, इरियावही आदिमें क्या विधि है सो विधि से सीखे ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय! नौकारआदिककी विधि जो श्रीवीतरागसर्वज्ञदेवने शास्त्रोंमें कहीहै उससे शुद्ध अक्षर उच्चारण करना गुरुके पासमें यादकरे और उसका उपधान वहे ॥

शंका—अजी उपधान क्या चीजहै और उपधान वहना किस शास्त्रमें कहाहै और नौकार क्या गुरुके पास सीखे तबही यादहोगा और क्या घरादिकमें सीखे तो याद नहीं होगा ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! विना उपधानके तो श्रावकको नौकार गुननाही न सूझे अर्थात् कल्पे नहीं और गुरु के विना शुद्ध अक्षर उच्चारण नहीं होतेहैं और जो लोग इस कालमें लड़कोंको उनके बापमहतारी लाड़के वश होकरके नौकारको उच्चारण करातेहैं तब वे लड़के पूरा बोलतो नहीं जानें परन्तु बापमहतारीके कहनेसे अक्षर उच्चारते हैं तब णमोअरिहन्ताणं की जगह णमोहत्ताणं ऐसाभी उच्चारण करजातेहैं इसरीतिके उच्चारणसे उलटी असातना होतीहै और इसीलिये वर्त्तमानकालमें घरमेंही नौकार सीखनेसे यथावत उच्चारण नहींकरते किन्तु महा अशुद्ध बोलतेहैं क्योंकि देखो णमोकी जगह नमो हरेक शख्स उच्चारणकरताहै बल्कि कितनेही मूर्खपुरुषोंने पुस्तकोंमेंभी णमोकी जगह नमो छपायदियाहै और तीसरे चौथे पदमें तो बिलकुल अशुद्ध बोलतेहैं सो दिखातेहैंकि 'णमोअयरीयाणं'के बदले 'नमो अरियाणं' और'णमोउवज्झायाणं'की जगह 'नमोउज्झारियानं' बोलतेहैं सो गुरुके विना सीखनेसे इस नवकार मंत्रको अंडबंड बोलकर नानाप्र-

कारकी असातना करतेहैं इस असातना होनेहीसे वर्त्तमानके जैनियोंमें दिनपरदिन हानिही होतीचली जातीहै. और जो तुमने कहा कि उपधान क्या चीजहै इसका उत्तर सुनो कि उपधान उसे कहतेहैं विनयसहित उपवास आदिकरके गीतार्थ गुरुके पासमें उपदेश ले और जैसा२ गुरु क्रियाकी कहै वैसी क्रियाकरे जबतक उपवास आदि करके गुरुके पास उपदेश न लेगा तबतक उसको वह नवकारआदि गुनना यथावत फल न देगा और यह उपधानका बहना श्रीउत्तराध्ययनजीके बहुश्रुत अध्ययनमें अथवा महानिशीथ सूत्रआदि मेंकहाहै ॥

**शंका**—अजी वर्त्तमान कालमें तो तुम्हारी लिखी रीतिको कोई नहीं करताहै और हरेक करातेभी नहींहैं और प्रवृत्तिमार्गमें हजारों आदमी बिनाउपधान के ही कररहे हैं ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय! यह तेरा कहना बहुत अनसमझका है क्योंकि देख गुजरातमें सैकड़ों श्रावक श्राविका आत्मार्थी भव्यजीव उपधान बहतेहैं और मारवाड़मेंभी कितनेही श्रावक श्राविकाने उपधान बहकर अपना नौकर आदि गुनना सिद्धकियाहै इसलिये तेरा यह कहना नहीं बने कि वर्तमान कालमें कोई नहीं बहता (करता) है इसलिये हेभोलेभाई! उपधानादि बहकरही नौकार आदिको गुनना सफलहै बिना उपधानके जो क्रिया अर्थात नौकार आदि गुननाहै सो निष्फलहै क्योंकि भगवतकी आज्ञा बिना जो काम करनाहै सो न करने के समानहै क्योंकि देखो उपाध्याय श्रीसमयसुन्दरजी महाराजने श्री महावीर स्वामीकी स्तुतिमें उपधान तप वर्णन कियाहै सो उसको किंचित् लिखकर दिखातेहैं कि बिना उपधान के कोई क्रिया करनी न कल्पे सो स्तवन यहहै ॥

श्रीमहावीरधरमपरगासे बैठीपरषदवारजी । अमृतवचनसुनी अति-मीठा पामेहरषअपारजी ॥१॥ सुणो२ रे श्रावक उपधानवह्यांविन, किमसूझे नवकारजी । उत्तराध्ययन बहुश्रुत अध्ययने एहभणयोअधिकारजी ॥२॥ सुणो० ॥ महानिशीथ सिद्धान्त माहेंपिण उपधानतपविस्तारजी । अनुक्रमशुद्ध परंपरदीसई, सुविहित गच्छआचारजी ॥ ३ ॥ सुणो०॥ तपउपधान वह्यां विन किरिया,तुच्छ अल्प फल जाणजी । जे उपधान वह्यानरनारी, तेनो जन्म प्रमाणजी ॥४ ॥ सु० ॥ तपउपधानकह्यो सिद्धान्तें जो नविमाने जेहजी । अरिहंतदेवनी आणविराधे भमस्ये भव२तेह-जी ॥ ५ ॥ सुणो० ॥ अघड्याघाट समा नरनारी विनउपधाणे होय-जी। किरियाकरतां आदेशनिर्देश कामसरे नहिं कोइजी ॥६॥ सुणो० ॥ इक घेवरनें खांडैभरियो अति घणो मीठोथायजी । एक श्रावक उपधान वहे तो धन २ तेह कहवायजी ॥७॥ सु. ॥ " इत्यादि पीठका हमने लिखीहै बाकी "रत्नसागर"मेंहै सो देखलेना और उपधानके उपवास आदितो उपधान वहनेकी अर्थात् क्रियाकरानेकी पुस्तकोंमें लिखीहै कि जैसे नौकारके उपधानमें साढ़ेबारह उपवास करनेपड़तेहैं और २०तथा २१ दिनलगतेहैं इसीरीतिसे इरियावही आदिक सबकी विधि कहीहै इस जगह ग्रंथ बढ़जानके भयसे सबकी विधि न लिखी इसलिये जो श्रावक विनय सहित उपधानादि क्रिया करके गुरुसे उपदेश लेकर जो सामायक आदि क्रियाकरेंगे अथवा नौकारको गुनेंगे उनको जिनराजकी आज्ञासहित यथावत फलहोगा नतु अन्य रीतिसे ॥

अब सामायककी विधि कहतेहैंकि—प्रथम कहीहुइ रीतिकरके सहित हो व सामायकके वास्ते क्याकरे सो कहतेहैं कि प्रथम ३ नवकार गुणकर अथवा पंचंदिया कहकर स्थापनाजी स्थापे तिसके बाद स्था-

पनाजीके सामने २खमासमणा देकर नमस्कारकरे फिर सुख तप श-रीरनी विधि इत्यादिक इस गाथाकरके सुखतप पूछे फिर जिसके बाद 'अभुट्ठिओमि' कहकर मिच्छामीदुक्कडंदे फिर१खमासमाणादे इसरीति से पेश्तर स्थापनाजी स्थापले ॥

**शंका**— जिस जगह गुरुका अभावहो उसजगह स्थापनाजी करे या सबजगहही करे ?

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! इसका उत्तर ऐसाहै कि शास्त्रोंमें ऐ-सा कहाहै कि 'गुरुअभावेठमणा' इसका अर्थ ऐसा हुआकि जिसजगह गुरुका अभाव हो उसजगह स्थापना अवयश्मेव करे ऐसा भीअनुयो-गद्वार सूत्रमें कहाहै इसलिये गुरुके अभावमें थापना करना योग्यहै नतु सब जगहही स्था ना करना ॥

**शंका**—अजी आपने कहा सो तो ठीकहै परन्तु वर्त्तमान का-लमें साधूआदिक होतेहैं उस जगहभी बिना स्थापनाके नहीं करते हैं किन्तु साधूजी बैठेहों तोभी स्थापनाजी के बिदूना सामायक प्रतिक्र-मणआदिक नहीं करते बल्कि कहीं२ तो ऐसाभीहै कि किसी साधूके पास चन्दनकी स्थापनाहो विना आर्यकी स्थापनाके वे लोग सामायक प्रतिक्रमणआदि कोई नहीं करे सो वर्त्तमान कालमें तो विना स्थापनाके सामायक प्रतिक्रमण आदि कोई क्रिया नहीं करताहै तो फिर आपने अनुयोग द्वारका प्रमाण दियाहै सो गुरुके अभाव तो यह प्रमाण ठीकहै परन्तु जो गुरुके सत्तभावमें अर्थात् गुरुके बैठेहुए बिना स्थापनाके सामायकादि नहीं करतेहैं उसका कारण क्याहै ?

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! इस तुम्हारी शंका ऐसाउत्तरहै कि हमने तो प्रमाण शास्त्रकादिया है और जोकोई नहीं करते उनके

करानेके वास्ते तो हमारा कुछ जोर नहीं और जो तुमने कहीं ३ के श्रावकों के मध्ये कहा सो वे श्रावक लोग गच्छ ममत्वरूप कदाग्रह में फंसे हुएहैं इसलिये चन्दन की स्थापना को छोड़कर आर्यकी स्थापना सेही कामकरतेहैं यह उनका कदाग्रहहै क्योंकि शास्त्रों में १० प्रकार की स्थापना कही है यथा "अक्खे वडाडे कट्ठेवा" इत्यादि इसरीति से पाठ है पासेकी चाहे आर्यकी हो चाहे चन्दनकी हो चित्राम हो अथवा पोथीकी स्थापना हो इन्हीं के दसभेद होजातेहैं १ यावत कथक २ यत्रक इसरीति से शास्त्रों में कहाहै इसलिये शास्त्रोक्त कोई स्थापनाहो। और जो तुमने कहा कि साधुके सद्भाव मेंभी विना स्थापनाके क्रिया नहीं करते इसका कारण क्या सो तो ज्ञानीजाने परन्तु मुझको ऐसा प्राचीन आचार्योंका अभिप्राय मालूमहोताहै कि जो पंचदियामें आचार्य के गुणकहेहैं वे गुण यथावत वर्त्तमान कालमें मिलना कठिनहै इस अभिप्रायसे आत्मार्थी आचार्य ने समझकर यह रीति चलाईहै कि उन गुणों के अभावसे स्थापनाजी करना और उस स्थापनाके सामने भव्यजीव आत्मार्थियोंकी क्रिया होना ठीकहै ऐसा होतो ज्ञानीजाने मेरी बुद्धिके अनुसार मैंने यह वात कही है इसमें मेरा कुछ आग्रह नहीं है ॥ इसरीतिसे स्थापना कियेके बाद श्रावक सामायक करे सो सामायक ३ रीतिसे शास्त्रों में उच्चारण करना कहाहै एकतो" जावो नेम पज्जुवास्वामी" ऐसा उच्चारण करे दूसरा" जावो साहु पज्जुवा स्वामी" इसरीतिसेभी सामायक करे तीसरा "जावो चेइया पज्जुवास्वामी" इसरीतिसेभी उच्चारण करे इन तीनों रीति में से जैसा जिसको मोका दीखे उसरीति से उच्चारण करे यह तीनों रीति भगवत आज्ञामें हैं ॥

शंका— अजी आपने जो यह तीन रीतें लिखी सो हमारे तो

आजतक श्रवण करनेही में न आई हां अलबत्ता " जावोनेमपज्जुवास्वामी " इसरीति का पाठतो छापेकी पुस्तकोंमेंभी देखतेहैं और वर्तमानकालमेंभी सब कोई " जावोनेमपज्जुवास्वामी " इसरीतिसे करातेहैं परन्तु न मालूम आप यह अपूर्व रीति कहांसे सुनातेहो !

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय ! हमतो कोई अपूर्व रीति कहते नहीं किन्तु शास्त्रके अनुसार कहतेहैं सो श्राद्धविधिमें येतीनों पाठलिखे हुए हैं और जो तुमने कहाकि हमने कभी सुनाही नहीं यह तुम्हारा कहना अनसमझकाहै क्योंकि शास्त्रों में अनेकबातें कहीहैं तो क्या तुमने सबही सुनलीनी, अथवा जो तुमने सुनीहैं वेही बातें सत्यहैं बाकी नहीं ? इसलिये हेभोलेभाइयो ! कुगुरु कदाग्रही हठग्राहियों का संग छोड़कर आत्मार्थी शुद्धपरूपक गुरुकुलवाससेनेवाले शुद्ध साधुओंका संग करो तो तुमको इस स्याद्वाद जिनधर्म, वीतरागके मार्गकी यथावत मालूमहो । जब तुम्हारी दिव्य दृष्टि होवेगी तब श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव के कहे हुए शास्त्ररूपी समुद्रमेंसे चिन्तामणि रत्न हाथ लगनेसे तुम्हारा कल्याण होगा नतु अन्यरीतिसे. इसलिये चमको मत । जो हमने ३ रीति ऊपर लिखी हैं उनका जुदा २ उच्चारण करना और उस उच्चारण करनेमें जो प्रयोजन उसको तुम एकान्त चित्त करके सुनो कि "करेमिभंते सामाइयं सावज्जंजोगपच्चक्खामि जावोनेमपज्जुवास्वामी दुविहं तिविहेणं" इत्यादि पाठ जो है सो इसमें "जाउनियमपज्जुवास्वामी" इस पाठमेंतो तुम्हारे कुछ विवादहै नहीं क्योंकि इसरीतिसे तो तुम लोग करतेही हो परन्तु दोरीतियों में जो तुमको शंकाहै उसके दूरकरनेके वास्ते उन दोनों रीतियों को प्रयोजनसहित कहतेहैं सो सुनो । आवश्यक सूत्रकी टीका २२००० श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजकी कीहुई उसमें २१००० हजारसे ऊपर ऐसा

पाठहै जिसकी खुशी होसो देखलेना वह पाठ यहहै " करेमिभंते-सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि दुविधं तिविधंजावसाहु पज्जुवा-स्वामि" इसरीतिसे पाठ लिखा हुआहै यह पाठ बोलनेका अभिप्राय क्या है सो हम दिखातेहैं कि जावसहुपज्जवास्वामी कहनेसे कालका नियम नहीं क्योंकि जितनी देर तक उसकी इच्छा हो ४ घड़ी २ घड़ी २ पहर तक जबतक वहँ साधुके समीप अर्थात साधुके मकानमें बैठाहुआ है तबतक उसकी सामायक है और "जावनियमपज्जुवास्वामी" इस नि-यम शब्दके कहनेसे तो २ घड़ी कालका नियम होगया और साधु श-ब्द कहनेसें कालका नियम न रहा इसलिये "जावसाहु पज्जुवास्वामि" कहा॥

शंका—आपने शास्त्रोका प्रमाण देकरकहा सोतो शास्त्रों में हो-गा परन्तु जावसाहुपज्जुवास्वामी इस कहने का प्रयोजन क्याहै ॥

समाधान— भोदेवानुप्रिय ! एकाग्र चित होकरके प्रयोजन को सुनो कि " जावनियमपज्जुवास्वामी " इस कहनेमे तो काल अर्थात दो घड़ीके बाद सामायक अवश्यमेव पारनी होगी और जावसाहु प-ज्जुवास्वामी इस शब्दके कहनेसे कालका नियम न रहा तो उसकी खुशी आवे जब सामायक पारे पारने और नहीं पारनेका मतलब यह है कि जब वह भव्य जीव सामायक लेके बैठा और साधुजी से अनेक तरहकी स्याद्वादरीतिसे आत्मविचार पूछनादि करनेलगा । जब उस अ-गह साधुमुनिराज से संबंध चला और उससम्बन्धमें अध्यात्मरससे आत्मानन्द आनेलगा उस वक्तमें कालका तो ख्याल कुछ रहेगा नहीं और वह अपने अध्यात्मरसमें लैलीन होगा और अनेक तरहकी आ-त्मार्थकी बातें सुनेगा इसलिये " जावसाहु पज्जवास्वामी " इस वाक्यके

उच्चारणसे कालका भय न रहेगा । कदाचित् वह जावोनियमपज्जुवा-स्वामी इस पाठको उच्चारण करता तो दो घड़ीका काल आनेसे सामा-यक पारनेसे और फिर लेनेकी क्रियामें अध्यात्मरससे आत्मानन्दका स-म्बन्ध जो मुनिराज के मुखारबिन्दसे सुननेका संयोगथा उसका क्रिया के करनेसे वियोग होजाता और फिर वह सम्बन्ध विलम्ब होनेसे मिल-ना मुश्किलथा और वह चित्त भी क्रिया करनेके बाद यथावत न रहा क्योंकि देखो यह अनुभव लोक में प्रसिद्धहै कि सम्बन्ध चलरहाहै उ-समें से हटकर फिर उस सम्बन्धको चलावे तो वह मजा अर्थात रस स्वा-द नहीं आताहै । इसलिये श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव सर्व्वदर्शी ने साधुमु-निराजके समीप "जावसाहुपज्जुवास्वामी" भव्यजीव आत्मार्थी के वास्ते उच्चारना कहाहै क्योंकि देखो संसारी सम्बन्धसे जो अनादि कालका सेंधा जो संसार उसकेही सम्बन्धमें विलम्ब होनेसे रस नहीं रहता तो अध्यात्म रस जो नवीन सेंधाहै उसके सम्बन्धमें विलम्ब होनेसे क्योंकर वह रस रहेगा ? इसलिये साधुके समीप "जावोसाहुपज्जुवास्वामी" कह-ना ठीकहै और जो साधु का अभाव हो तो स्थापना आचार्यके सामने "जावनिमयपज्जुवास्वामी" कहना ठीकहै इस प्रयोजनसे "जावसाहुपज्जु-वास्वामी" कहा ॥

अब "जाओचेइयापज्जुवा स्वामी" इस की विधि कहते हैं कि आवश्यक की चूर्णी में श्रीदेवर्धी क्षमाश्रमणजी महाराज यह कहते हैं स्थूल चूर्णी में जहां रिड्ढीपतो अनरिड्ढी पतो श्रावक की विधि कही है उस जगह ऐसा कहा है कि रिड्ढीपतो अर्थात् राजा अ-थवा नगरसेठ आदि अथवा कोई कामदार आदि वह तो आडम्बर के साथ साधु के समीप ही आकर सामायक करे और जो अनरिड्ढी-

पतो अर्थात् गरीब श्रावक हैं सो साधुके समीप अथवा जिनगृहे अर्थात् जिनमन्दिरमें अथवा पोषदशालायां अथवा स्वघरमें निर्विघ्न अर्थात् जिस जगह कोई तरहका विघ्न न हो अपने चित्तकी स्थिरता हो उन चारों स्थानोंमें से खुशी आवे उसमें सामायक करे. ऐसा उस चूर्णीमें लिखा हुआहै जिसकी खुशीहो सो देखलेवे। यह तो पूर्वधर आचार्योंकी कीहुई चूर्णीका है दूसरा जोकि चौमासीव्याख्यान सालभरमें तीन दफा बंचताहै उसमेंभी इसीरीतिसे जो हम ऊपर लिखआयेहैं लिखाहै जिसकी खुशीहो सो उन पत्रोंमें देखलेय अथवा जब चौमासी-व्याख्यान बंचे तब उपयोग देकर सुनले तो जिनघरमें सामायक करना सिद्ध हुआ तो उसजगह जिनमन्दिरमें इसरीतिसे उच्चारणकरेकि "करे-भिभंते सामाइयंसावज्जंजोगपच्चक्खामि जावचेइयापज्जुवा स्वामीदुविहं-तिविहेणंइत्यादि" तो इस पाठसे ऐसा सिद्धहुआ कि जावचेइया पज्जुवा-स्वामी इसरीतिसेभी सामायक करे इस जगहभी कालका नियम नहीं जब तक उसकी खुशीहो तबतक सामायकमें बैठारहे ॥

**शंका**—आपने उस जगहतो साधुके सतसंगका प्रयोजन अ-र्थात् अध्यात्मशैलीका श्रवण कहा परन्तु जिनमन्दिर अर्थात् प्रतिमाके सामने श्रवणका तो कुछ फलहै नहीं दर्शनके सिवाय पूजनादिभी नहीं बनताहै क्योंकि देखो सावध्यजोगका पचक्खाणहै इसलिये सचित वस्तुका तो संघट्टा कर नहीं सक्ते इसलिये यहां कालका नियम नहीं रक्खा इसका कारण क्याहै ॥

**समाधान**—भोदेवानुप्रिय हमको इस तेरे कहनेसे मालूम होता है कि किंचित् किसी कुगुरुका बहकाया हुआहै जबतेरेको ऐसी शंका हुई कि साधुके पास तो सतसंगसे अध्यात्मरसके श्रवण करनेका फल

है और जिनप्रतिमाके सामने सिवाय दर्शनके पूजनादिक भी करना नहीं बनता सो तू इस अशुभवासनाको अपने चित्तसे उठायकर कुगुरुको जलांजलि देकर स्याद्वादजिनमतके रहस्यको जाननेवाले सतगुरुओंकी चरणसेवा कर जिससे तुझको द्रव्यानुजोगकी शैली मिले और उस द्रव्यानुजोगसे उपादान कारण और निमित्त कारणको जाने और उन कारणों समेत जो तू व्यापार करे तो तेरेको कार्यहोनेकी मालूम पड़े इसलिये इस जगह तेरी शंका दूरकरनेके वास्ते किंचित् भावार्थ लिखतेहैं इस को एकाग्र चित होकर सुन जब सामायकमें कालका नियम न रहा तब वह आत्मार्थी भव्यजीव तरणतारण सबदुःखनिवारण पद्मासन लगायेहुए शांतरूप नासाग्र ध्यान करके संयुक्तको देखकर प्रभुके गुणोंको विचारने लगा और उन प्रभुके गुणोंको विचारते२ जब अन्तरंग दृष्टि अपने स्वरूपमें गई तब अपने स्वरूपको उपादान जानकर प्रभुको निमित्त कारण मानकर उनकी और अपने गुणकी तिरोधानकी सत्ता और आविर्भावकी प्रगटता अपेक्षा लेकर एकता करके रूपातीतादि ध्यानमें लगता हुआ उसमें जो उस भव्यजीवका चित्त लगाहुआहै उस चित्तके लगनेसे जो उसको आनन्द प्राप्त होताहै सो उस आनन्दमें विघ्न न होनेके वास्ते श्रीवीतरागसर्वज्ञदेवने ज्ञानमें देखकर भव्यजीवोंके वास्ते कालका नियम न रक्खा जो कालका नियम रखते तो काल पूरण होनेसे अवश्यमेव सामायक पारनी होती तो सामायक पारनेकी क्रियासे उस आत्मानन्द में विघ्न होजाता कदाचित् जो तुम ऐसा कहो कि फिर सामायक लेकर वह ध्यान करने लगे तो हम जो साधु मुनिराजके सत्संगमें कहआयेहैं वही बात इस जगह जानलेना क्योंकि 'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं'। इसलिये हेभोलेभाई! सर्वज्ञदेव वीतरागने कार्य

का नियम नहीं रहनेके वास्तेही "जावचेइयापज्जुवास्यामी" आत्मार्थी भव्यजीवोंके वास्ते कहाहै, नतु जिनमतके अजान पुरुषोंके वास्ते। इस रीतिसे तीन प्रकारसे सामायकका उच्चारण करना श्रीसर्वज्ञदेव वीतरागने कहाहै सो निष्प्रयोजन नहीं किन्तु सप्रयोजन है ॥

शंका— आपने रीति कही सो तो ठीकहै परन्तु 'जावनियम' मेंभी तो यही बात आतीहै कि जितना वह नियम ले उतनाही काल का है ॥

समाधान— भोदेवानुप्रिय! यह कहना तुम्हारा ठीक नहीं है क्योंकि अव्वलतो जो नियमका ठिकाना नहीं होता तो आचार्य लोग तीन प्रकारकी सामायक उच्चारना शास्त्रोंमें न कहते इसलिये 'जावनियम' शब्दके कहनेसे तो दो घड़ीकाही नियमहै नतु कमती जियादा इसलिये यह तुम्हारा शंका करना व्यर्थहै इसलिये झगड़ेको छोड़कर सामायक लेनेकी विधि को एकाग्र होकर सुनो। प्रथम एक खमासमण देकर "इच्छाकारेण संदिसह भगवन्न सामायकलेवा मुंहपत्तीपडिलेहु" फिर गुरुका वाक्य सुनकर "इच्छं" कहे और एक खमासमण देकर मुंहपत्ती पडिलेहे उस वक्त २५ बोल मुंहपत्तीके कहै सो बोल पुस्तकोंमें बहुत जगह लिखेहैं परन्तु इस जगह किंचित् भावार्थ दिखानेकेवास्ते बोलोंको जुदे २ लिखकर दिखातेहैं १ सूत्रअर्थ सांचो सद्दहुं २ समगत मोहनी ३ मिथ्यात्वमोहनी ४ मिश्रमोहनी परिहरुं यह चार बोल मुंहपत्ती खोलती विरियां कहै। ५ कामराग ६ स्नेहराग दृष्टिरागपरिहरूं यह ७ बोल मुंहपत्तीके प्रथम कहना चाहिये। अब इनका हम भावार्थ कहतेहैं कि सूत्रतो श्रीगणधरमहाराजका कहाहुआहै और अर्थ श्रीअरिहन्तभगवन्तका कहाहुआहै क्योंकि "गहेहा-

गुथई अरिहाभाषई " इतिवचनात् इस सूत्र और अर्थ को निस्सन्देह हो सत्य मानै इस वाक्यमें कोई तरहका विकल्प न रहे उस विकल्प के दूरकरनेके वास्ते यह वचनहै ॥ अब दूसरा समगतमोहनी का अर्थ ऐसाहै कि देवगुरु पर जो राग उसको परिहरे अर्थात् अप्रशस्तराग जोहै उसको दूरकरे । यहां अप्रशस्तराग करके जो संसारी अर्थात् इन्द्रियआदिकोंके विषय उनके भोगकी इच्छासे देवगुरुके ऊपर जो राग उसको दूरकरे। यहां कोई ऐसी शंका करे कि समगत मोहनी कहनेसे तो देवगुरुका राग बिलकुल परिहरे इस के उत्तर में हमकहते हैं कि वे जिनआगमके रहस्यके अजान हैं जो वे अजान न होते तो इस वाक्यको न कहते क्योंकि देखो रागकी प्रकृति लोभहै वह लोभ दशवें गुणठाणे क्षय होताहै और यह कहना अर्थात् सम्यक मोहनीका परिहरन पांचवें गुण ठाणेसेही है इसलिये यहां अप्रशस्त राग जो देव गुरुसे करना, उसका दूर करानाहै किन्तु प्रशस्त राग तो देवगुरु पर रखना मुनासिबही है क्योंकि देवगुरु निमित्त कारणहैं जबतक निमित्त कारण का बहुमान आदि न करेगा तो उपादान कारणसे कार्यकी सिद्धि न होगी इसलिये मोहनीकर्म दशवें गुणठाणे तक रहताहै सो इस जगह सम्यक् मोहनी परिहरूं इस शब्दसे अप्रशस्त राग परिहरनाहै नतु प्रशस्तका । और मिथ्यात्व मोहनी मिश्र मोहनी परिहरना इसका अर्थ तो प्रसिद्ध है। अब कहतेहैं कामराग स्नेहराग दृष्टिराग इन तीनोंको दूर करे तो इसका भी ऐसा भावार्थहै कि कामराग अर्थात् संसारी काम अर्थात् इच्छा उसको दूरकरे और स्नेहराग के• संसारीसे जो प्रीति उसको दूरकरे और दृष्टिराग वाह्य जो चक्षु उनसे जो देखना स्नेह उसको दूरकरे। यहां कोई ऐसी शंका करे कि इन तीनों बोलों